# पद्मांजलि

## पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं

डॉ० पद्माकर द्विवेदी

# लेखक के बारे में

जन्म तिथि :– 19-9-1932

जन्म स्थान - धार रियासत (म० प्र०)

शिक्षा :– एम० बी०, बी० एस० 1956 (किंगजॉर्ज मेडिकल कालेज, लखनऊ)
डी० ओ०, एम० एस० 1966 (जवाहरलाल इंस्टीच्यूट, सीतापुर)

सेवा :– स्नातक होने के बाद लखनऊ मेडिकल कालेज में हाउस-सर्जन, सर्जिकल रजिस्ट्रार तथा सर्जरी में पोस्ट-ग्रेजुएशन के दौरान डिमांस्ट्रेटर-कम-टिउटर-तदुपरांत भारतीय रेलवे चिकित्सा (आई० आर० एम० एस०) में तीस वर्ष तक सेवारत।

सम्प्रति :– सेवानिवृत्त होकर सिद्धार्थ क्लीनिक के माध्यम से जन-सेवा-रत

प्रकाशित पुस्तक :– सेक्स के सौ सवाल–1975

प्रकाशित रचनायें :–

(1) कहानी—चिन्गारी, सरिता, तथा कालेज पत्रिकाओं में।

(2) कविता –युग-चेतना, कादम्बिनी, सरयू-संदेश, कालेज पत्रिकाएँ

(3) वैज्ञानिक शोध-प्रबंध—हिन्दू-युग में शल्यन–सरस्वती, ज्ञानोदय सरिता, नर-नारी।

डॉ० पद्माकर द्विवेदी के निबन्धों में स्वाध्याय की प्रतिच्छवि, चिन्तन का गाम्भीर्य, अर्वाचीन वैज्ञानिक ज्ञान के साथ पौराणिक आख्यानों (मिथिकों) का भावनात्मक संश्लेषण तथा शब्दों के प्रत्युत्पन्नमति-जन्य-व्युत्पत्ति-सम्मत विविधार्थ चमत्कारी बन पाठक का ध्यानाकर्षण करता है और उसे गहरे पैठकर लेखक की अन्तरनुभूतियों को समझने की भावोन्मेषिणी-जिज्ञासा जाग्रत करने को प्रवृत्त होना पड़ता है।

डॉ० पद्माकर द्विवेदी का कविरूप इस आलोच्य ग्रंथ में जाज्वल्यमान होकर उभरा है। कवि द्विवेदी की रागात्मक अन्तर्भावनाओं में प्रज्ञा (मस्तिष्क) पक्ष तो प्रबल है ही ; परन्तु इस अन्तर्पक्ष के साथ-साथ उनकी काव्याभिव्यंजना का बाह्यपक्ष भी रसासिक्त एवम् मनोरम है। कविता में कलित शब्दावलि, सघन संक्षिप्तता, प्राकृत-अलंकार-विधान, लय-प्रधान-संगीतात्मकता और ललित अभिधात्मिका-शैली उसके सुषुमत्व में चार चाँद लगाते हैं। डॉ० पद्माकर द्विवेदी ने छंद-विधान पर अधिक जोर नहीं दिया है। हृदयस्थ भावोद्वेलन को उन्होंने अकृत्रिम रूप में गुनगुनाकर सक्षम रूप से प्रस्तुत किया है। उनकी यह परोसन स्वाभाविक होने से पाठक में अभिवाँछित रस निष्पत्ति में समर्थ है। किसी भी काव्य रचना के "सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' तत्त्व यही हैं। कविता आनन्द-वर्षण करती है, रसमयी बनकर आह्लादिनी है और मनोत्सव संवर्द्धिनी है।

डॉ० पद्माकर द्विवेदी विरचित "पद्माञ्जलि" में "पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्" का अवरोद्घोष सप्रयोजन है।
इस काव्यकृति के चार खण्ड सार्थक एवं सटीक हैं।

प्रथम खण्ड "पद्म पीयूष" (फलम्) आध्यात्मिक भावों की मंजूषा है। इसमें अमर तत्त्व (ईश्वर-आत्मा-जगत् आदि) का निरूपण द्विवेदी जी को अभीष्ट बना है। विराट् परमात्मा और प्रकृति का त्रिगुणात्मक रूप (ज्ञान, योग और भक्ति) सदा ही चिन्तनीय, मननीय और पूजनीय बने हैं, जिज्ञासुओं और श्रद्धालुओं के लिए।

द्वितीय खण्ड है "पद्म-पराग" (पुष्पम्) जिसमें शृंगारिकता को प्रश्रय मिला है। असंदिग्धत: यह जीवन का मकरन्द है, सुरभित पराग है।

तीसरे खण्ड "पद्म-प्रसंग" (पत्रम्) में सामयिक विषयों पर दृष्टिपात हुआ है। यह पद्माकर जी की संवेदनात्मक जागरूकता, जिजीविषामयी प्रतिक्रिया का प्रतीक है। इसमें उनका सामाजिक मानवीयता के प्रति समर्पित रूप प्रतिभासित हुआ है।

चौथे खण्ड "पद्म-प्रमोद" (तोयम्) में विनोद और हास्य का प्राधान्य है। विनोद आनन्द (सुख) का पूर्व रूप है और इसमें मानव मन की अठखेलियाँ पारदर्शी बनती हैं। हास्य जीवन का लवण है, जिसके बिना इसके अन्य संव्याप्त भाव (रस) फीके पड़ जाते हैं। कविता लोकोपकारिणी जनोत्कर्षिणी होने के साथ-साथ जनरंजनी भी होनी चाहिए। साहित्य में मनोरंजन का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। नीरस उपदेश निराकारी होकर शुष्क मरुभूमि बनते हैं। उनमें रस सिंचन से अनुराग का साकारत्व होता है। अत: डॉ० पद्माकर द्विवेदी द्वारा इस प्रमोद खण्ड की समाविष्टि सहज सराहनीय है।

उद्धरणों को प्रस्तुत करने का लोभ संवरण कर रहा हूँ। रसपायी पाठक-मधुप इस काव्य-पद्म से मधुपान छककर करेंगे ही। काव्य की इस रसाल-वाटिका में द्विवेदी जी का पिकी-स्वर पाठक-गण सुनें और गुनें। इस रसार्णव से मुक्ता प्राप्त करने का सत्प्रयास पाठकों का क्षेत्र है। कवि और पाठक के बीच मैंने लघुसेतु बनने का प्रयास किया है; मैं उभय बीच अवरोधी तत्व नहीं ही बनना चाहता।

-- अनंतचतुर्वेदी संवत् 2051 69, आर्य नगर, लखनऊ-4

———

# खण्ड-१-पद्म-पीयूष

## अनुक्रमणिका



क्र० पृ० उ०

— ——

# वही तो विधाता है

ऋषियों ने दरसा जिसे,
कवियों ने परसा है,
संतों ने समझा जिसे
भक्तों ने गाया है,
जगत को चलाता जो,
वही तो विधाता है ।।१।।

वेदों से सुनकर,
श्रुतियों से गुनकर,
स्मृति से बुनकर,
लय-छंद-बद्ध कर,
जगत को नचाता जो,

वही तो विधाता है ।।२।।
वेदों ने बोला जो,
श्रुतियों ने गाया भी,
सतत सत्संग सेवी,
राधा का माधव,
ऊधव भरमाता जो,

वही तो विधाता है ।।३।।
रुद्र, ब्रह्म, वरुण, इन्द्र,
मरुतों से समर्चित,
निसिदिन हैं खोजते,
जिसे योगी ध्यानावस्थित,
"बेसुध" मनुआ सरसाता जो,
वही विधाता है ।।४।।

—सरयू संदेश अगस्त 93

## पूर्ण-चेतन-ईश्वर

क्षणिक हो अथवा क्षण-भंगुर हो,
मात्र गति ही परिवर्त्तन हैं;
समय-साक्षेप हुआ करता सदा
माया नटिनी का नर्त्तन है ।।१।।

अस्थायी, गतिमान, चंचल चलायमान,
होकर, वही कहलाता अनिकेतन है;
ध्रुव, स्थायी, स्थिर, गतिहीन, नित्य, निश्चल
सत्व ही समस्त चेतनाओं का चेतन है ।।२।।

सच है, हर कोई मर कर फिर जन्म लेता है,
और यह भी कि हर जन्म लेने वाला मरता है;
मगर इस परिवर्त्तन पूर्ण जगत में,
कुछ ऐसा भी है, जो न जन्मा है, न मरता है;
जो अजर-अमर है, जो नहीं नश्वर है,
सतत, सनातन, शाश्वत सत्तावान् ईश्वर है ।।३।।

— सरयू संदेश जून-93

## त्रिगुणात्मक सृष्टि

"अस्मिता" - स्तब्ध - ग्रस्त व्यवस्था-गत सुविधा में,
द्वैत - जनित "आस्था" के द्वंद्व से "असित्त्व" बंधा विपदा में,
सत्य-शिव-संकल्प-कण्ठ मेले, "आस्था" जब जयमाला,
तब जीवन-डोली के युग्म कर्णधार बनते "अस्तित्त्वास्मिता ।"

—सरयू संदेश अगस्त 93

# काक भुशुण्डि कह गये सस्वर

काक-भुशुण्डि कहे क्या सस्वर ?
विहंग-भुशुण्डि सुन-गुनकर,
व्यास-सुभाष-सन्यासी हरिजन,
साधू-संत-महंत-पुरातन,
सनत, सनंदन, सनक, सनातन,
व्यक्त कर गये मनोनुकूलमत ॥1॥

"ब्रह्मा-विष्णु-शंभु त्रय-मूरत,
मीन-कमठ-शूकर और नरहरि,
वामन-राघव-राम-परशुधर,
गौतम-मोहन-माधव-गिरिधर,
कश्यप, कपिल, कणाद, पतंजलि,
पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, यमदग्नि,
भरद्वाज, वशिष्ठ, कौशिक मुनि,
दक्ष प्रजापति सहित सप्त ऋषि
नारद याज्ञवल्क्य अरु पाणिनि
उमा-रमा-अरु-वीणा-वादिनि
सकल शक्तियाँ भव-विस्तारिणि
श्रद्धा-भक्ति-सिद्धि-प्रदायिनि ॥2॥

ठाकुर ठोंक के गाँठें मतलब,
"कसरत से उपलब्धि उत्तम"
काट शीश धड़ सींग पूंछ पर,
पाँचों घी तर ताव मूंछ पर ॥3॥

बोल के निहाल, "अकाल श्री सत्"
राज करेगा खालसा हरदम,
वाहे गुरु का खालसा, वाहे गुरुजी
वाहे गुरु की फतेह, फतेह-गुरु-श्री ॥4॥

जैनी गिनवाये "चौबीसों तीर्थंकर",
बौद्ध बुलवायें, "अहिसा परमोधम्म",
पारसी पढ़वायें, "मज्दाहुर-मज्दाहुर",
मसीही दरसाये "माँ मरियम के पुत्तर",
मुल्ला की अज़ान "अल्लाहो अकबर",
सूफी का ज़हान "नूरे-खुदा-ए-कुदरत",
पर-उपदेश बहुतेरे कौशल,
उड़ दिखलाते सात आसमान तक ॥5॥

भरे पेट के पोंपल प्रवचन,
शूल सरीखे वर्जित व्यंजन,
क्षुभित उदर हितशाक-सजीवन,
कंद-मूल-फल-फूल सुधा सम ॥6॥

पेट-फुला पुजते लम्बोदर,
सखा सरीखे सगे सहोदर,
कम तोलू बिन बोलू अकसर,
बिना विचारे है क्या हितकर,
लाभ "शुद्ध" रख "शुभ" के ऊपर,
भय-बिनु बेचे बनिया बनकर ॥7॥

पकड़ हथकड़ी पूर्वाग्रह की,
हाथ समाये न, पूरन-सच,

धर्म की आख्या दुर्गम अतिशय,
"अहं ब्रह्मास्मि" एवं "तत्त्वमसि"
"इदमित्थम" अनिर्णित अब तक,
'बेसुध' मिले विकुण्ठा कब तक ?
सच्चिदानन्द चरण-शरणागति
शांति-दायिनी-सद्‌गुरु-परिणति ।।8।।

"शब्द"-भुशुण्डि-काक-खग-"अक्षर"
कहे ककहरा काक, "क-ख-ग",
कमाके खाओ ऋतु-सम-अन्न,
निसिदिन गाओ हरि-गुन-गन,
उलट 'नर्त्तकी' माया नटिनी
करो 'कीर्त्तन' राधा-नागर
शाश्वत-साध्य औ साधन सतत्
काक कह रहा, "हरि ॐ तत्सत्" ।।9।।

"हरि ॐ तत्सत्" क्रोज एल्फाबेट,
अथ "ए-बी-सी" इति "एक्स-वाई-जेड",
हरि ॐ तत्सत् क्ष-त्र-ज्ञ,
ज्ञेयाज्ञेय शेष-सर्वज्ञ,
आदि-अनादि, अन्तानंत,
यही सिद्ध करना था बस ।।10।।

हरिॐ तत्सत् "क्यू ई-डी",
धर्म सनातन हो विजयी,
सत्य की सत्ता, ऋतु-लय-बद्ध
हरिॐ तत्सत्, ठाकुरजी,
म्हाने चाकर राखोजी,
"ठाकुरजी, ठाकुरजी, ठाकुरजी"

– सरयू संदेश अगस्त 93

## धृतराष्ट्र का भाष्य

शैल, शिखर, उद्गम, सरित, सागर संगम,
जीव, जन्तु, जड़, जंगम, नर, वानर, पशु, धन,
औषधि, गिरि, कानन, महल, कुटीर, आँगन
अखिल देश सम्पत्ति से होता राष्ट्र निर्मित ।।१।।

सारी ये सम्पदायें समय द्वारा पकड़ी हैं,
न इसकी है, न उसकी है, काल-पाश से जकड़ी हैं,
कालाधीन नवीनता काल पर्यन्त टिकती हैं,
समय पूरा होते ही काल-कवलित होती है ।।२।।

कालानुसार राष्ट्र का उदय होता है,
अवधि उपरान्त त्वरित विलय होता है,
राष्ट्र का पतनोत्थान कालापेक्ष होने से,
काल का समानार्थी धृत राष्ट्र-होता है ।।३।।

## राजकीय लाटरी

दु:शासन के बन्धु मित्र, धृतराष्ट्र की संतति,
देवों को वनवास, दनुज - दानवो की स्तुति,
काम—क्रोध — लोभ - पगी प्रतिकूल पद्धति,
खेल जुआ धर्मराज हुये थे पद - च्यूत ।
जनता जुआ-तले दबी रहे, कभी उठे नही,
इसीलिए राजकीय लाटरी होती है;
दुर्योधन की नीयत द्यूत—योजना की नजर
जुआड़ी के जर जोरू ज़मीन पर होती है ।

— कादम्बिनी नवम्बर 93

# क्रांति-द्रष्टा-कवि-पीर-फकीर-निकेतन

ारत माता मुझे बता दे, तेरे संत फकीर कहाँ है ?
स पावन धरती पर रहते तुलसी-सूर-कबीर कहाँ हैं ? ।।१।।

सूर-जनित "सूर"-ज-सा होकर
"केशव"-नखत सरीखे झिलमिल,
ज्योतिष्मान् जहाँ जुगनू-से
अधुना कवि करते हैं टिमटिम।
कवितावली वर्ण-व्यंजन में,
गीतावली—विलय—बंधन में,
"रामचरित - मानस - मज्जन" में,
संत - महंत - सुमन - आगमन में,
हो सत्संग जहाँ राका - दिन,
तुलसी-शशि रहता आलोकित,
सियाराम-आवास जहाँ है ।।२।।

काली – बाण — भास — भवभूति,
दादू मीरा — नानक — नरसिंह,
गीत - गोविन्द - देव - द्वय – गुरु-जय,
वीर-घोष "जय हिन्द" सुभाषित,
गुंजित आँगन आजाद जहाँ है ;
वीर - प्रसूति - समाधि जहाँ है ;
मेरे बेटों ! क्राँति के कवि ही
होते-पीर-फकीर-मकाँ हैं ।।३।।

(यह कविता श्री चन्द्र भूषण त्रिपाठी के नाम से सरयू-संदेश
के नवें अंक में छपी थी)

## मानवता का मन्दिर

मानवता का मन्दिर बने,
विकसित विश्व नागरिकता हो ;
ऐसे चरमोत्कर्ष, परमोद्देश्य हेतु,
शक्ति-संधान हो, सदा लक्ष्य-वेध हेतु ;
न कि नक्कार-खाने में तूती जैसा,
विरोधी स्वर दबाने या मिटाने हेतु ;
अथवा नहीं राजनीतिक आकाश में,
'मंझो' से पतंग-काट-पेंच लड़ाने हेतु ;
मन्दिर बनायें और मस्जिद भी बनाने दें,
क्योंकि घर हैं दोनों ही, उसी की इबादत के,
होते हैं, हजार नाम, जहाज से समर्थवान,
जिसके भव-सिंधु पार करने हेतु ;
'बेसुध' सँघर्षमयी परिस्थितियों के मध्य,
'साधन' और 'साध्य' का 'शाश्वत-समन्वय',
वांछनीय है, विवेकमयी 'आस्था' का लय-छन्द,
मन की 'अस्मिता' और तन के 'अस्तित्व' हेतु ।

—सरयू संदेश मई 93

## शक्ति - संचय का हेतु

शक्ति का संचय करें साधन स्वरूप, सीमाओं से आगे बढ़ने के लिये,
बाधाओं से पुरजोर लड़ने के लिये, जड़ का जड़ी जैसा पदुपयोग हो ।१।
राष्ट्र -वन-सम्पदा-पशु-संकुल, योग-क्षेम-वाहक संरचना हेतु,
चेतन की चेतना पर, जड़ता हावी न हो पाये, ऐसा उद्योग हो ।२।
पंच बन बैठें, यदि पंचायत में, तो परमेश्वर का कीर्तिमान कायम रक्खें,
बिल्लियों का निवाला निगलने वाले, बन्दर-बँटवारे का न कभी
संयोग हो ।३।

– सरयू संदेश फरवरी 94

# सार्थक गीता (प्रतीक गीता)

युद्ध में स्थिर रहने वाला "युधिष्ठिर",
है अन्य नाम, विवेक – पूर्ण बुद्धि का;
महाकाय, दीर्घकाय, भीमकाय "भीम",
है परिणाम दृढ़ — प्रतिज्ञ — संकल्प का;
अर्जन करने वाला "अर्जुन" होता है,
उपनाम लक्ष्य - वेध — शक्ति का;
जो करे देवो से सहयोग, वही "सहदेव",
होता है प्रतिमान, निष्ठा—भक्ति का;
ज्ञान का न हुआ करता कुल कोई, अतएव,
"नकुल" ही है, प्रतिमान ज्ञान—शक्ति का;
अश्वेन्द्रियों से कर्षित देह रूपी रथ में,
उपरोक्त शक्ति सम्पन्न — रथी – आत्मा,
कृष्ण — सारथी के सान्निध्य में,
काल—समान धृतराष्ट्र से विजयी हो जाता है।
परमात्मा के परम धाम में प्रवेश पाकर,
सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, मुक्त कहलाता है;
केवल कुरुक्षेत्र या द्वापर तक सीमित नही,
देव-दनुज-समर निरन्तर निर्बाध चला जाता है।

— कादम्बिनी नवम्बर 93

## अद्भुत आश्चर्य !

जीवधारी सारे ही मरण-धर्मा हैं
मृतक हर कोई पुनरपि पुनर्जन्मा हैं
परिवर्त्तन से परिपूर्ण सारा जगत है,
जो मिथ्या, नित नश्वर, स्वप्न-वत् है ।।१।।

स्वप्न की अवधि भर रुचता है, चुभता है,
जगने पर, दृश्य नित्य नया ही निखरता है
स्वप्न औ जागृति के हिण्डोले में निशिदिन
जीवन जन्म–मृत्यु खेमों में कटता है ।।२।।

अति अद्भुत आश्चर्य तो यही है कि
अहंकार-वश, अपने को अमर मान,
मानव औरों के प्राण हरता है, और,
खुद अपनों के हाथों से मरता है ।।३।।

— कादम्बिनी नवम्बर 93

## बलिदानी कौन ?

पीछे हटे कमजोर थे, आगे बढ़े सहजोर थे,
अपमान का जीवन जिये, जीते हुये भी वे मुये,
सब लोग उनका नाम लें, लेकर चलें अभियान जो,
बढ़ते वही सम्मान से "बेसुध" बढ़े बलिदान दे ।

28.3 66

# आधुनिक पांचाली

न आतप से आकुल, न बरखा से व्याकुल,
जिनका घर-दफ्तर, चिर वसंत-संकुल,
नियुक्ति वा विमुक्ति कर रहते प्रसन्न-चित्त,
धर्म पति युधिष्ठर का नया नाम "नियुक्ति-पति";

भीम जैसे भीमकाय, दीर्घकाय, महाकाय,
महाप्रबंधक को कहते "अनुशासन-पति";
बजा-ठोंक-देख-परख-चयन-अर्जन कर्त्ता,
विभागाध्यक्ष अकेले अर्जुन से "अधिकारी-पति";

बड़े-मूस से कुतरते फाइल साल-दर-साल,
मण्डलाधीश नकुल-नुमा "मध्यम-पति";
सहदेवों के दलदल से, छलबल के कौशल से,
कल के सहयोगी, भाँजी-मार "अधम-पति";

ऐसे पाँच पतियों से पालित पांचाली,
आधुनिक राजपत्रित अधिकारी हैं;
कर्मचारी संघों के नेता दुर्योधन बंधु,
मामा शकुनि सतर्कता अधिकारी हैं ।।१।।

दुर्योधन के कुत्सित परिवादों से,
मामा शकुनि के कुटिल इरादों से,
दु:शासन के दूषित विधि-विधानों से,
प्रताड़ित पांचाली निर्वसना की की जाती है ।।२।।

धृतराष्ट्र की आँखें तो जन्म से अंधी हैं,
गाँधारी की आँखें स्वेच्छा से बंधी हैं,
दुर्योधन के नमक-हलाल दरबारी बंदी हैं,
शेष सभासदों की आँखें अवनत हो जाती है ।।३।।

पतियों के पराजित पौरुष से पीड़ित
अनवरत अपमानित, आर्त्त कृष्णा
कृष्ण की कृपा से, चिरवसना बनकर
अपना उघरता तन ढक पाती है ।।४।।

– सरयू संदेश मार्च 93

# फिजूल–खर्च बीबी

शोभा है वढ़ाती क्लब की नित जाती नये फिल्म खेल है,
सखियां ही न आती हैं चाय पर, छैलों से भी कुछ मेल है,
बखार कहाँ,? कैसी,?, होता जब मुषकों में दंड पेल है
वीवी "बेसुध" की रसोई से नोन लकड़ी न तेल है ।।१।।

तारीख आज सात, पै न पास इक अधेल है,
फिजूल खर्च फैशन की ऐसी अमर बेल है,
कैसी! गृहस्थी कहे, भली इससे तो जेल है,
बी बी "बेसुध" की पहर आठों की नकेल है ।।२।।

—सरयू संदेश दिसम्बर 92

# मूल्य और कीमत

्य का अकेलापन उसे श्वेत धवल रखता है,
मतों का बहुरूपियापन उसे कृष्ण-मलिन करता है,
ग्ल-प्राइस-सिस्टम' में कीमतें न उतरने को चढ़ती हैं,
द्वि-मूल्य'' या ''बहुमूल्य'' छतरी तले पनपती हैं ॥1॥

श्यक-सामग्री की ''सीता'' को हरणकर,
शानन'' ''अशोक-वाटिका'' में छिपाता है,
नी काली करतूतों को सुनहरा करने हेतु,
री लंका शुद्ध सोने से सजाता है ॥2॥

यों का ''बजरंगी'' - वपु, कीमती - ''सुरसा''
आनन में बौना वामन बन जाता है,
ादेश पालन के दृढ़ निश्चय के आगे
नुमान'' हर अवमानना सह जाता है ॥3॥

पहृत सीता'' के मुक्त होने तक
ाम राज्य'' का आगमन टल जाता है ॥4॥

्यता - मर्यादा की अवहेलना से,
ल चेतना सुलगती है,
मूल्यन से सदा ''मूल्य'' घटता है,
ीमतें'' कभी नहीं घटती हैं ॥5॥

ावण'' के राज्य में डकारते हैं
हू - चोर और गुण्डई बढ़ती है
एव ''बेसुध'' बेपनाह हरिजनों को
ाम'' की अनुपस्थिति अखरती है ॥6॥

—सरयू संदेश सितम्बर 93

# पारावत-संवाद

कहे कबूतर, 'गुटरूँ-'गूँ, कबूतरी से पूछे ज्यूं !
'कहाँ गइलिउ?', 'लजाइ गइलिउ?', लुकाइ गइलिउ?'
'भुलाइ गइलिउ?' 'हेराइ गइलिउ?' उठाइ गइलिउ?'
'पेटवा में पूसी के सिराइ गइलिउ?' वराइ गइलिउ?' ॥1॥

बोली कबूतरी, 'मैं यहाँ हूँ, पूसी के पेट की चूरमा हूँ;
कबाब-कीमा-कटलेट-सफर नामे की शूरमा हूँ।
कबूतर के कान बजे, 'म्याऊँ' 'मैं आऊँ?' मैं आ जाऊँ?'
मानो पूसी पूछ रही हो; 'आज कलेऊ तुझे बनाऊ' ॥2॥

'सुनरी! चतुरी! चगढ़! बिलाई! तेरे झाँसे में न आऊँ;
चारा-दाना डालकर, नयी कबूतरी घर बैठाऊँ;
उससे 'गुटरूँ-गूँ' बुलवाकर, खतरे की घंटी बजवाऊँ;
अच्छा-सच्चा दाना चुगकर, जोड़े से परिवार बढ़ाऊँ;
करूँ नसीहत नित चूजों को, 'बिल्ली तेरी वंश नसाऊँ ॥3॥

सुन कपोत की बहकी बातें, कबूतरी बोली समझाके,
'स्वामी ! मत इतना चहको-बहको,
निज सहचरिकी परिणति परखो,
मार्जारी के आमाशय से गर्भाशय तक मैं भरमी हूं,
कोख से बिल्ली की, जो औलाद अभी जनमी है,
वह मेरे ही, रक्त-रुधिर-रस से पनपी-विकसी है;
मैं उनकी पालक-पोषक हूँ, मैं ही मातृ-मदर-मम्मी हूँ ॥4॥

बच्चे तो आखिर बच्चे हैं, चूजे हों बागड़ बिल्ले,
ममता-सेतु-मात्र माँ मरकर, सृष्टि ने नित नव रचती है

जों की मौत का गम-गलत करने को,
ल्ली-बालक-बिल्लों का उदर भरती है,
र्व-भूत-हिते-रत' होकर 'गुटरूँ-गूँ' कहती है ॥5॥

ुट-गुन-सुन' 'गुट-गुम-शुम'; 'गुट में बसकर'; 'संघ-सहत्तू'
ाग विसंगति'; 'लय-पद-बँधकर'; 'संग-सग चलतू',
र संकट के', 'विधि-वि-पदा के'; 'अरिष्ट-निवारण-हित',
रि शरणं भूत्वा', 'कर कीर्त्तन तू'; ।भज भग भगवत कूँ ॥6॥

-गौ-गंगा-सेवी बनकर; गाओ गीत-गोविन्दं-भगवद्
-यम-बंध-विमुंचित होकर, भजगोविन्दं; गोविन्दं-भज;
ड़ो पंचमकार, पकड़ो पंच गकार,
ो पंथ है महाजनेन गत,
 गोविन्दं, भज गोविन्दं; भजगोविन्दं मूढ़मति "बेसुध" ॥7॥

---

। चुके हैं 'समीर सुरभि' रचना जिसकी;
या है; दिव्या उसी इन्दु मिश्रा की
या दिव्य-दर्शी; दिव्यादर्शी भी;
या स्वयं-सिद्धा; सत्या विद्यार्थी भी;
या का दर्शन सतत-शाश्वत-सनातन है;
रावत-संवाद; पुरातत बसनों में भी अति नूतन है;
य-ज्योति दिन दूनी रात चौगुनी पसरे;
या के दिव्यजीवन-हित; 'सरयू' समर्थन है ।

यह रचना दिव्या मिश्रा के नाम से छपी थी सम्पादन)

—सरयू संदेश नवम्बर 93

# कैडर रिव्यू और लाल फीता शाही

रोशनी माँगती है कभी रोशनाई
पेपर से फाइल भरी माँगती है
पेन माँगती है रिफिल माँगती है
मौका मुलाकात दो ही घड़ी का
होता निरीक्षण पल दो विपल का
फिर भी शत शत शरद माँगती है। रोशनी ॥१॥

दफ्तर के दम-घोंट वातावरण में
उबरने को रद्दी की टोकरी से
सेहत के कमीशन की हर इक सिफारिश
सहमति की उनसे सही माँगती है। रोशनी ॥२॥

पैरिटी व इक्वेलिटी के प्रिंसिपल पर
कब लगी नाव कागज की तट तलक
जाल "सैंक्शन", "सेलेक्शन" का डाल कर
किस कदर कैडर रिव्यू को फाँसती है। रोशनी ॥३॥

"प्रोपोजल" कभी अथवा "जस्टीफिकेशन"
अड़गें सदा नित्य नये डालती है
शिखंडी की ले ओट ब्यूरोक्रेसी
तीर अर्जुन सरीखे विकट मारती है। रोशनी ॥४॥

विभागों में मेडिकल की बेढब अवस्था
जो "मिण्ट" सिक्के सभी ढालती है
"क्रैडिल" से "काफिन" तक काम जिनका
उनकी कहानी जिगर सालती है। रोशनी ॥५॥

लेविल न थी जो "फिश" ऑर "फाऊल"
सतत जड़ भरत सी बनी रही बाऊल
कुम्भकरनी निद्रा से करवट बदल कर
वही कौम काया पलट माँगती है। रोशनी ॥६॥

ढूढ़े पड़े अब सारे बहाने
लूले लगें सब हीले हवाले
कैसे कहें लाल फीता शाही
जो रगे-गुल से बुल बुल के पर बाँधती। रोशनी ॥७॥

गागर भरी आकंठ अन्याय की
खुद बखुद अंतिम क्रिया चाहती है
जर्जर खंडहरों के आवास से
सदा के लिये वह विदा माँगती है। रोशनी ॥८॥

व्यवस्था की बुनियाद धंनी तोलती है
व्यवस्था की बेटी "मनी" बोलती है
व्यवस्था की निष्ठा गुनी आँकती है
व्यवस्था की शक्ति बलि माँपती है। रोशनी ॥९॥

जुबाँ रह गयी न लुगद की मुतासिर
जो निहित स्वार्थ की दुनिया को मिटा दे
खलक को उठाकर फलक को हिला दे
अवनि को जगाकर गगन को गुँजा दे
ए० डी० एम० ओ० की अनी माँगती है
प्रोफेशनल यूनिटी माँगती है
"बेसुध" बिगुल की अकेली ध्वनि की
निरन्तर प्रबल प्रतिध्वनि माँगती है।
रोशनी मांगती है ॥१०॥

मार्च 1980

# सनातन संघर्ष

युद्ध ही जीवन है, सृष्टि का जीवन है
सृजन की सूची में संघर्ष का पिरोवन है
युद्ध की विभीषिका से, उसके कोलाहल से
आंख मूँदने वालों से नम्र यह निवेदन है
युद्ध की भयानकता, उसकी भयावहता
उसकी वीभत्सता, सीमित समय तक है
संघर्ष की समाप्ति पर विजय की प्राप्ति पर
संभव है शांन्ति पर निष्कर्ष यह सहज सुलभ
कौन था महादेव कौन बड़ा असुर
''बेसुध'' था विषधर कौन, कौन था अमृत घट
अतएव न दैन्यं न पयायनमं, आगे तू बढ़ता चल
दिन प्रतिदिन सतत संघर्षरत चरे वेति चरे वेति

-- सरयू संदेश दिसम्बर 92

# "पारिश्रमिक"

खटता दिन भर जो किसान है
मिलता बस चुटकी पिसान है
विधि का यह कैसा विधान है
श्रम का यह कैसा निदान है
करता कोई सोम पान है
उड़ता दूजा सोमयान पे
गड़ता विधुपर नवनिशान है
''वेसुध'' कैसा यह जहान

मई-66

# जीवन-मौत

ौत यों जीवन से बोली
म बनो अनमोल मोती मैं तुम्हारी सीप हूँगी
ुम बनो जब धवल ज्योति तम सरिस मैं साथ दूँगी
दि बढ़ो गति में परिधि की, केन्द्र की स्थित मैं लूँगी
ान गरिमा में घिरो यदि, मैं बनूँ अनुभूति गूँगी
ुम करो निर्माण नवका, मैं करूं जीरन की होली
ौत यों जीवन से बोली ।।१।।

ुम बनों यदि अमिय सागर परिमान गागर मैं भरूँगी
ुम चलो अनचले मगमें. मैं चले पै पाथर धरूँगी
तुम लगो जब शब्द अक्षर मैं विराम बिन्दी लगूंगी
तुम बनो सम्मान सबके, जब भी मैं गाली सहूँगी
ुम भरो भण्डार जग का. मैं फिरूँ ले रीती झोली
मौत यों जीवन से बोली ।।२।।

ुम लगो यदि लोल लोचन टकटकी में मैंबधूंगी
तुम बसों गति में हृदय की धुक धुकी में मैं बसूंगी।
तुम बनों दिनमान नभ के मैं घड़ी टिक टिक बनूंगी
तुम रहोगे श्वास में जब निश्वास में मैं भी रहूँगी
मैं तुम्हारी चिर सुहागन सदा हमारी एक डोली
मौत यों जीवन से बोली ।।३।।

तुम सलिल मझधार के हो मैं सरित तट की सहेली
तुम सुलझती सी समस्या मैं सदा अनबुझ पहेली
तुम कठौता भर मिठाई नीम चढ़ती में करेली

अनगिनत साथी तुम्हारे परिगणित सी मैं अकेली
तुम वसन हो व्याह के तो मैं कफन की पहने चोली
मौत यों जीवन से बोली ॥४॥

तुम रतन मन नासिका के पाँव में मैं पड़ी बेड़ी
तुम सुलभ चिकनई रोटी मैं अजब हूँ खीर टेढ़ी
नवयुवक सुकुमार हो तुम मैं युगों से हूँ अंधेरी
शस्यश्यामल खेत हो तुम मैं विभाजन श्वेत मेंड़ी
इस जगत का तुम विभूति उस जगत की मैं रंगोली
मौत यों जीवन से बोली ॥५॥

फूल की मुस्कान हो तुम नीम की हूँ मैं निबोली
तुम चहक हो विहग कुल की मैं उलूक-नन्दन की बोली
तुम बिरल संजीवनी हो मैं गरल अहिफेन गोली
मधुप गीतों में रमो तुम मैं सड़ूँ दादुर की खोली
संतुलन हित मैं सुबकती जवकरों 'बेसुध' ठिठोली
मौत यों जीवन से बोली ॥६॥

23 10.66

## कालजयी काया

यद्यपि इतनी रोग ग्रस्त है; फिर भी यों दिनरात व्यस्त है;
नहीं खबर कब उदय अस्त है "बेसुध" फिरती दिन समस्त है ।
आते-जाते हुआ कष्ट है, उसको, जिसकी राह भ्रष्ट है,
न होता उसका समय नष्ट है, काल-जयी जो दूर द्रष्ट है ।

मई-66

# लगन

चुप रहूँ तो अनुभूति बोले,
क जिह्वा को करे जो वही हिय का द्वार खोले,
क मट्ठा भी पिये वह भर गये जिसके
भी के दूध के फलके फफोले
ले ही मर जांय मानस की मुरादे,
गर उर में उठा करते अनल-ओले ।
भव भले ही बंद होना वेदना मस्तिष्क की,
न्तु मानस की लहरियाँ सरिस पीपल पात डोलें,
न का परिमाण सम्भव, मान का निर्माण सम्भव,
गर मिलता न तराजू बाँट ऐसा
ो लगन का वजन तोले ।

चुप रहूँ तो ··· ।।१।।

रणा से क्या न मिलता है जगत में,
थ में रसना किसी की, यदि मधुर बोले
ो हंसी आने पे दुनिया रो रहे थे हम निरंतर
ाम कुछ ऐसा करें जाने से पहले,
क हम हँसें और जगत रो ले ।

चुप रहूँ तो ··· ।।२।।

यही बस कामना कि कर सके उनकी मदद हम
म्ब जिनके हृदय होते सरल भोले,
आ करती जिनकी मुद्रा मैल दोनों हाथ की
ो सदा ही पेट की सलवट टटोलें,
र सके न हम विसर्जन जब तलक अन्याय का
ब तलक "बेसुध" की सुध में
हे उठते गरम शोले ।

चुप रहूँ तो ··· ··· ।।३।।

11-4-66

# मायाविनी मृग-मरीचिका

अगर खोल लेंगे बाहर का द्वार
तो बन्द मैं भीतर का करुँगी,
अगर वहाँ पर भी पहुँचेगे आप
तो बंद मैं अपनी आँखें करुँगी,
जब खोल लेगे पलकें हमारी
तो बन्द मैं अपना मानस करुँगी
जब खोल लेंगें मेरी गांठ मन की
तो हो के तिहारी वै "वेसुध" फिरुँगी।

मई-66

# शंका

यह बात समझ में हमको न आती
कि सूरज में क्यों तुमने अग्नि लगा दी ?
कि क्यों चाँद के मुँह में कालिख बिठा दी ?
सितारों की क्यों तुमने चिनगी उड़ा दी ?
हिम से दिया ढक क्यों पक्षधर को ?
सरितायें सागर में क्यों डुबा दी ?
सतत वेदना में तड़पना अगर था ?
तो "वेसुध" को क्यों "सुध" घुट्टी पिला दी।

—सरयू संदेश नवम्बर 9

# समझौता

ााई-बाप' सरकार की, जुड़वां दो दुहितायें,
ग्यवस्था' एवं 'सुविधा', समरूप सहोदरा है।

खी-सहेली हैं, संग-संग खेली हैं,
क साथ बढ़ती हैं, साथ साथ पढ़ती हैं।

क-रूप सजती हैं, एक-सी संवरती हैं,
ली-सी उभरती हैं, फूल-सी निखरती हैं।

क-आदर्श बहनें, सम-आदर्श बहनें,
र्पण की परछाई सी, आदर्श सगी बहनें।

धी-सयानी बहने, दुनिया से न्यारी हैं,
र किसी को प्यारी हैं, जब तक बेक्वारी हैं।

क लगन-मण्डप में, सोधे गये मुहूरत में,
ाक्ष्य हेतु अग्नि के, सात फेरे करती हैं।

वदा-बेला मुंह-ढकी, दुलहनें बदलती हैं,
ाधु-पर्क मौके पर, ढकी-बात खुलती है।

दल गये-घर में, दुलहनें सिसकती हैं,
ुंह ढापे रहती हैं, चुप्पी साधे रहती हैं।

हाथ लिये, बेल पत्र, दधि-दूर्वा-अक्षत,
वर 9: नैवेद्य-धूप-चन्दन, लौंग-फूल-श्रीफल।

मन्दिर और मज़ारों के, दिन-रात करे दर्शन,
घिस-माथ इबादत के, बाँटे बताशे तुलसीदल।

पीहर में पहली बार, बहनें जब मिलती हैं,
बात-चीत हँसी-ठठ्ठा, लाँग-डाँट करती हैं।

निज-निज की नियति पर, रोती हैं, कलपती हैं,
पतियों के 'टिउआ' पर, पति-गृह पलटती है।

मैके-ससुरे हिजरत में, जीजा-साली मिलते हैं,
मुसकी-मजाक, छेड़-छाड़ चुटकी-कटाक्ष करते हैं।

'व्यवस्था' को 'सुविधा-पति', भले लगने लगते हैं,
'सुविधा' को 'व्यवस्थापक' जी, उतने ही जमते हैं।

फिर वही होता है, जो, 'मंजूरे खुदा' होता है,
जीजा-साली, पति-पत्नी केलि-कलोल करते हैं।

'सुविधा-भोगी व्यवस्थापक' 'व्यवस्थापकीय-सुविधा'
इस कदर घुल जाते हैं, 'सारुप्य' बन जाते हैं।

'सालोक्य' बस जाते हैं, 'सायुज्य' होकर के,
बेनजीर जोड़े बन जनजन को लुभाते हैं।

'बेसुध' रंग-रास के 'समीकरण' अजीबो-गरीब, बेमिसाल -समझौते'
'अति-गोपन' फाइल में, 'गोपालक-गोपीनाथ' के
हस्ताक्षर से अनुमोदित हो जाते हैं।

आगामी सरकारों की जुड़वाँ, बेटियों के 'समझौते'-निमित्त,
सचिवालय में, सचिव के, दस्तावेजों में दर्ज हो जाते हैं ०

।यवस्थापक' की 'सुविधा', जुड़वाँ को जन्म देती है,
ुविधा-पति' की 'व्यवस्था', समय पै साथ देती है।

ार दोनों ही जुड़वाँ, एक-लिंगी न होकर,
ाषम-लिंगी सहोदर की संज्ञा अपनाते हैं।

यवस्थापकीय सुविधा' के बच्चे, 'स्थिति' एवं 'संविधान',
ुविधा-पति व्यवस्थापक' के बच्चे, 'समस्या' एवं 'समाधान', ।

क साथ बढ़ते हैं, अलग-अलग पढ़ते हैं,
सेरे भाई-बहन, इक-दूसरे को परखते हैं, ।

मस्या' 'संविधान' को, 'स्थिति' 'ससाधान' को
ली भाँति समझकर, एक रंग में रंगते हैं।

मीकरण' सुलझाकर 'समझौते' नेक करते करते हैं
ज-निज माँ-बापों के नक्शे-कदम पै चलते हैं।

पर जवाव देने तक, पुनर्जन्म होने तक
-कयामत लगातार, क्रम जारी रहता है।

वहारिक जोड़ों का परिवार पनपता है
सुध' वेजानो को खा:मखा: खटकता है।

मझौते'

---

—सरयू संदेश मार्च 93

# चंचल-चक्षु

पण्डितों की फूट पै, ठाकुरों की लूट पै,
विक्रेता की छूट पै, बचे खुचों की टूट पै,

चेतना ! क्यों तरस खाती है ? आँख डबडबाती है ॥ 1 ॥

विद्वानों के विवाद पै, बलवानों के निनाद पै,
धनवानों के प्रमाद पै, हताहतों के विषाद पै,

वेदना ! क्यों मर-खप जाती है ? आँख तरल हो जाती है ॥ 2 ॥

पढ़े-कढ़ों की झूठ पै, "हलधरों" की मूठ पै,
"वैंकरों" की सूद से, शोषितों की ठूंठ पै,

कसी मुट्ठी ! क्यों ढीली पड़ जाती ? आँख सजल हो जाती है ॥3॥

बूढ़ों की समझ पै, युवकों की कसक पै,
वितरक की 'पकड़' पै, भोक्ता की रसद लिये,

गाड़ी ! क्यों अटक भटक जाती है ? आँख छलक जाती है ॥ 4 ॥

चालक की चाल पै, पालक की पाल पै,
'मालिक' के 'माल पै', हारे हुओं के हाल पै,

योजना ! क्यों दीर्घसूत्री हो जाती है ? आँख टसुये टपकाती है ॥

दल, दल के दल-दल पै, छल बल के कौशल पै,
पल पल के हलचल पै, दिल दिल की दहशत पै,

भ्रू चाप ! क्यों सीधी पड़ जाती है ? आँख भरभर रीत जाती है ॥

आस्तीनी सर्पों से, जयचन्दी दर्पों से,
विभीषणी मुद्रा से, कुम्भकर्णी निद्रा से,

संकल्प शक्ति ! क्यों डिग जाती है ? आँख रक्तिम हो जाती है ॥

'रोजगारी विनिमय, पै, 'कचहरिया मुण्डन' पै,
'अस्पताली दर्शन' पै, 'बाजारू थिरकन' पै,

बलखाती भीड़ ! क्यों धकियाती है ? आँख सिन्दूरी हो जाती है ॥

मुल्ला की अज़ान पै, अखण्ड पाठ जाप पै,
जागरण के मचान पै, सामूहिक देशगान पै,
चुनावी अभियान पै, बच्चों के इम्तहान पै,

इक की गूंज ! क्यों कहर ढाती है ? आँख लोहित हो जाती है ।।9।।
नेता की नालिशें, ठगों की साजिशें,
गुण्डई-सिफारिशें, गुरवा की गर्दन को,

है बेगाहे ! क्यों गर्दनिया दे जाती है ?
आँख-किरकिरी की पीर असह्य हो जाती है ।। 10 ।।
चुनावी झाँसों से, चमचो की साँसों से,
लाटरी के पासों से, सत्ता की देहरी से,
'सत्यमेव जयते' की "अर्थी" उठने पै,

ीवनी ! क्यों काम नहीं आती है ? आँख मातमी आँसू पी जाती है ।।11।।
निरक्षर के देवतुल्य पुजने की, रक्षक की कसी-कमर खुलने की,
लक्ष्मीपति के लक्ष्मी वाहन बनकर,
हथियाये चूहे निगल जाने की,

डम्बना ! क्यों रास आती है ? आँख देखी-अनदेखी कर जाती है ।।12।।
रासभ-राग सुनना हो तो अलग गधा-दौड़ करें
गर्दभ प्रत्याशी की घुड़-दौड़ों में घुस पैठ
बिल्कुल बेमानी है, 'आरक्षण' की ओट में,
हो रहे 'आरक्तन' से, उबरने की आशा कैसे करें
मुकदमा निबटाने को जब कचहरी 'दीवानी' है
ानिक धारायें ! क्यों बहसों में बह जाती हैं ?
आँख के पानी में नीयत उतर आती है ।। 13 ।।

'जनकों' की शपथ रखते हुए, 'दहेज-धनुष' जो तोड़े,
ऐसे 'पुरुषोत्तम की मर्यादा' को, 'सीतायें' चुनौती दे जाती
आधुनिक 'अग्नि-परीक्षा' की उपेक्षा कर
'दुर्लभ राम' की तलाश से विह्वल
'स्वयंवरी-माला' को फन्दा बनाकर
'यमराज' को वरण कर जाती है
क्रांति की आवाज ! क्यों चुप्पी साध जाती है ?

'पत्थर की आँख' किरकिरी झेल जाती है ॥ 14 ॥
मिलिटैण्ट मगरों की दाढ़े,
नक्सली नागों की गरल-ग्रन्थि,
टेरारिष्टी टाइगर की टेढ़ी पूँछ,
तमिल तेंदुओं की ऐंठी हुयी मूँछ,
भिण्डर वाले भेड़िये की भूख
आतंकवादी अवधूतों की हूक,
अंधेर नगरी की फैलती दिशाओं से निहाल,
उल्फा-उलूकों की 'मुआ-मुआ' कूक,
'कायदे-कानून' वाले अफसर की चूक,

सहने की शक्ति ! क्यों बार-बार आजमायी जाती है ?
भोर की प्रतीक्षा-रत आँखों में रात कट जाती है ॥ 15 ॥
'बापू के बन्दरों' के, मुख-कान-आँख ढक लेने से,
कही-सुनी-देखी जाने वाली अनीति,
ढक जाती है, कभी मिटती नहीं,
शुतुरमुर्गों के सिर धँसा लेने से,
तूफानी आँधी, कभी थमती नहीं ।

आँख सुन्दर ही देखें, कान मधुर ही सुने,
मुख प्रिय सत्य बोले, ऐसा तभी संभव है,
जब असुन्दर न देखने का, अप्रिय सत्य न सुनने का,
प्रिय असत्य न बोलने का, संकल्प हर कोई करे ।
'मधुर-सत्य-सुन्दर दर्शन' हेतु, अनशत-व्रत-उपवास करें,
असहयोग-आन्दोलन करें, अहिंसक-संघर्ष करें ।
'बापू के बन्दे', नकलची बन्दर न बने,
'करें या मरें' का 'तोता पाठ' न करें,
हाथ पर हाथ धरे बैठे न रहें,
'न दैन्यं न पलायनं' का अर्थ
पूरी तरह समझें, कुछ 'कर गुजरें' ।
ार्थक गीता ! क्यों नहीं पढ़ाई जाती है ।
आलसी आँख जागते हुए सोई कहलाती है ।। 16 ।।

निहत्थे 'राजुओं' की हत्या पै,
शुष्क सरकारी संवेदनायें,
'नमक घुले घड़ियाली आँसू' बहाकर,
भरते घावों को हरा ताजा कर जाती है ।
पुतला जलाने से, या पुतली मटकाने से,
'रक्त-बीजों' की गिनती कम नही होती है,
'कंस-रावण-हिरण्य कश्यप' की संतानें,
'कृष्ण-राम-नरसिंहों' की दहाड़ सुन,
'त्राहिमाम' 'त्राहिमाम' कहके ढेर होती है ।
टना इतिहास की ! क्यों बारबार दुहराई जाती है ?
अवतारों का सपना सच करने हेतु आँख लग जाती है ।। 17 ।।

सोये शशक पीछे रह जाते हैं, जागते कच्छप डीह छू जाते हैं
सोये को जगाना आसान है, जागे को उठाना महा कठिन,
उठे हुए आगे बढ़ जाते हैं; पिछलगुए ऊपर न चढ़ जाये
इसलिये सीढ़ी तोड़ जाते हैं,
उठने की कोशिश में पिछड़े पछताते हैं;
बढ़े-उठे-अगुओं की कृपा दृष्टि होने पर,
पिछड़े-दबे-अनुगामी 'बैठक योग्य' होते हैं
बोरी-बिस्तर-बँधने का बोझ ढोते हैं।
'चक्का-जाम-गाड़ी' का 'कील काँटा' बनकर,
नट-बोल्ट, ढील-कस, तेल पिला देते हैं,
'बिगड़ी व्यवस्था की मशीन' चला देते हैं,
'व्यवस्था-मूलक', 'सुविधा भोगी' 'लोभी लोग'
'समस्याओं' एवं 'स्थितियों' से 'समझौता' कर,
'व्यवस्था बदलने' का 'इरादा बदल' देते हैं।

अल्प स्मृति जनता ! क्यों 'वादे' भूल जाती है ?
'अल्पकालीन आँधी' आँखों में धूल झोंक जाती है ।।
'नजर साफ' होने तक सरकार सरक जाती है ।।
'बेसुध' बेगुनाहों, बेपनाहों को,
'मोहभंग' होने तक चैन मिल जाती है ।। 18 ।।

— युगचेतना–दिसम्बर 9

*

ाते है
ान,
ये

# सचेतक-सूत्र

भज गोविन्दं, गोविन्दं भज,
भजन-डगर पर, बढ़ो निरंतर;
बोल-बंद हो, अंत समय जब,
होते विफल, राग-छंद-पिंगल सब।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥१॥

न लोभी तो लक्ष्मी का वाहन,
ान-संतोषी, नित रत-सेवा-श्रम,
तत कीर्तन, हरि-सुमिरन कर,
हो, सनेह, शुभंकर सम्पत्ति।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥२॥

न्नत पीन पयोधर लखकर,
त मोहित हो नाभि निरख कर,
ज्जा - माँस - मूत्र - मलिन - घर
पु का कर लो शुभ - संस्करण।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥३॥

म्बर 9

द्म - पत्र पर चंचल जलवत्,
ीव अनास्थिर, रह जीवन भर,
रा - व्याधि - अहँ शर बिंधकर,
ोक - विकल है, सकल जगत यह।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥४॥

अर्थ - संचय - सामर्थ्य - शक्ति तक,
सगे - चचेरे, बहुतेरे परिजन,
निरख शरीर जरा से जर्जर,
कर बाहर, नहिं रखें परस्पर,
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।५।।

साँस देह में टिकती जब तक,
कुशल कुटुम्बी पूछे तब तक,
वायु - पिण्ड से विलगे जिस क्षण,
उसी वपु के भय से भागे सहचरि।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।६।।

खेल खेल में बीता बचपन,
तरुणाई रीती, प्रसंग – रत,
बढ़ा बुढ़ापा, कठिन कष्ट सह,
जन्म गँवाया, विनु हरि - संगति ।
भज गोविन्द, गोविन्दं भज ।।७।।

कौन सहचरी, कौन तनुज तव ?
अति विचित्र, संसारी बंधन सब;
तुम किसके हो, कौन जनक तव ?
बन जिज्ञासु, करो चिर-चिन्तन !
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।८।।

सत्संगति, निरासक्ति पैदाकर,
निरासक्ति कर विभ्रम-उज्जवल,
विमल - बुद्धि - बीज से विकसित,
मुक्ति दिलाती सत् की संतति ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।९।।

तरुणाई चुक जाने पर, चढ़े न काम ज्वर,
गील सूख जाने पर, नहीं दीखते कीच-कमल,
धीन - हीन - कुटुम्ब, होता अति लघु - तम,
त्य - लोक - दर्शन से, मिटे सभी माया-जगत् ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥१०॥

न - जन - यौवन - गर्व करो मत,
ाल करेगा, पल में सब कवलित,
ान सभी को, माया - संतति,
हो जतन से, ब्रह्म - पद - स्थिति ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥११॥

ाँझ-सकाले प्रति राका-दिन,
व ऋतु करती फेरे अन-गिन,
ाल केलि-वत्, गमन-आगमन,
सते गये, वासना-बंधन ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥१२॥

-घर की तू मत कर चिंता,
हीं, जानता है, सबका बस एक नियंता,
त्र एक सत्संगति-दुहिता
न-लोक-भव-तारिणि-वनिता !
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥१३॥

काचट निजसिर मुँडवाकर,
श बिखेर वा जूड़ा कसकर,
दर-हेतु बहु-वेश बदलकर,
ता मूर्ख अलख न लखकर
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥१४॥

श्वेत केश, शिथिल-वपु-जर्जर,
दंत-विहीन-मुख पोंपल होकर,
हिलते हाथ में लकुटी लेकर,
फिर भी घटे न वासना-विस्तर।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।१५।।

सम्मुख ज्वाला, सूर्य पीठ पर,
भीख की चुटकी, खा अँजुरी भर,
रात समेट घुटने ठुड्डी तक,
जकड़ा जाता, सघन ओढ़कर।
भज बोविन्दं, गोविन्दं भज ।।१६।।

गंगा-सागर-तीर्थ-व्रत रखकर
संकल्प-सरिस दान वितरित कर
सभी मतों का है यह दृढ़ निर्णय,
अज्ञानी, शत-योनि तक पाये न मुक्ति।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।१७।।

संचित सम्पत्ति-भोग छोड़कर,
देव-मंदिर में अथवा तरु-तल,
भू पर सोये, चर्म-मृग ढक कर,
कितना सुंदर है, वैराग्य शुभंकर।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।१८।।

योग - भोग - अनुरागी बनकर,
रहे अकेले वा सबके संग,
जिसके मन रमता है ब्रह्मन्,
सब कुछ लगे, उसे आनंद कर।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।१९।।

ंगाजल - लव - कणिका पीकर,
गवद्गीता किंचित पढ़कर,
ुरु - गोपाल एकदा जपकर,
ट जाते सब यम के बंधन।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥२०॥

ातृ - उदर में सोकर फिर - फिर,
न्म - मरण के चक्कर अन - गिन,
ार संसार का यद्यपि दुर्गम,
दपि तरें तुर हरि - दय - युत हरिजन।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥२१॥

ोढ़े कथरी, लुचकुन, चिरकुट,
ाप - पुण्य का जन - मग तजकर,
दा लक्ष्य निज मन में धरकर,
मता - योगी, बाल - पागल - वत्।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥२२॥

म, तुम, कौन ? कहाँ से आकर ?
कसे कैसे ? कौन माँ - पितु पाकर ?
रके सार - असार - अनुभव - गत,
जो लोक सब, सदा सपन - सम।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥२३॥

ो असहिष्णु ! करे कोप क्यों मुझ पर ?
ष्णु एक है, मुझमें, तुममें, अन्य जगह पर,
दि पाना चाहते, विष्णु - पद - स्तर,
ो जीवन जियो, सतत् समता - मय।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥२४॥

शत्रु, मित्र, पुत्र, सखा औ बंधु,
मत कर इनसे युद्ध वा संधि,
बसे सभी में "विभु - प्रभु - शंभु"
भज "केवल" को, भेद-अज्ञान तज ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।२५।।

काम - क्रोध - लोभ - मोह तज
साधक बनता खुद, ब्रह्म - तुल
आत्म - ज्ञान - वंचित मूर्ख - वत्,
पीड़ा सहे अनेक, फँसा रौरव नरक ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।२६।।

भगवद्गीता, प्रभु-नाम-सहस्र जप,
लक्ष्मी कांत में रख, ध्यान अनवरत,
सत्संगति से हर, मन का सब मल,
दीन-हीन-हित, करिये सम्पत्ति-वितरण
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।२७।।

इन्द्रिय-सुख-हित भोजन रुचिकर,
व्याधि-जनक, वपु-हेतु अहितकर,
यद्यपि सबका है अंत मरण-युत,
तबहुँ न छोड़े, पाप-मय आचरण
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।२८।।

अर्थ अनर्थकारी है, निशिदिन,
रंच मात्र नहि सम्पत्ति सुखकर,
धन-लोभी सुत से भी डरकर,
रहे सर्वदा सत्य यही है धन की गति
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ।।२६।।

न्द्रिय-आश्रित-जीवन-नियमन,
र-अक्षर का करके निर्णय,
यंतर कर सजप-शांति-मय,
त सतर्क हो ध्यान मग्न भी भज केवल श्रेयस् ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥३०॥

-पद-पद्म-सेवी-भक्त !
तुरत भव-बंधन-मुक्त,
द्रय-मन सब कर के नियमित,
गोगे प्रभु निज-हिय-स्थित ।
भज गोविन्दं, गोविन्दं भज ॥३१॥

— आदि शंकराचार्य विरचित "मोह मुग्दर" से अनुदित

———

## नये साल का संकल्प

बरसे कितने नयन कर रहे कितने क्रंदन,
कितने लुटे सुहाग उतर गये कितने कंगन,
कितने हुए शहीद काटते माँ के बंधन,
उनसे पूछे हाल नहीं अब जिनके नंदन,
करके उनकी याद जो जूझे समरांगन,
नहीं करें स्वीकार कभी खोना नंदन बन,
ताशकन्द न्यूयार्क चहे बैठक हो लंदन,
भोज भोग सब त्याग करें हम सैन्य ससर्थन,
बैरी हो मजबूर करै जब स्वयं समर्पण,
दूर हो सके जब विशाल भारत का खंडन,
जागे जब महान भारत का "बेसुध" जन मन,
तभी केश विन्यास तभी माथे पर चंदन,
तभी मुबारक नये साल का नव अभिनंदन।

7-1-66

## भगवद्भवन

निद्रा की नानी औ तन्द्रा की ताई
आलस की अम्मा, जहाँ लेती अँगड़ाई
टिके मोह अज्ञान, पसरे विपदाई
तम-लिप्त नर का जीवन दुःखदायी ।।1।।

आसक्ति-आवृत्ति-आलिंगन-बद्ध हुयी
दिन दूने रात चौगुनी पनपे तरुणाई
सत्ता-शक्ति-सम्पत्ति हथिया कर भी
पाते नहीं नारी-नर अजर अमराई ।।2।।

सत्त्व-सम्पन्न मानव ही पाते हैं प्रवेश वहाँ,
करते हैं जिस लोक में, निवास नित कन्हाई,
वह न वैकुण्ठ है, न योगियो का मानस ही,
हरि सदा रमते वहीं, जहाँ होती पूरी शरणाई ।।3।।

## मधुमेही मुस्कान

रुपये की सात किलो कसरत से मिलती थी,
वही आज सात रुपये किलो कसरत से मिलती है
चीन गयी चीनी, मधु-मिश्री प्राचीन हुयी
गुड़-गोबर सा मलीन, खाण्ड खण्डित विलीन हुयी ।।1।।

प्रभु के प्रताप से, मधुमेह की मिठास से,
मीठे की हर मुश्किल पल में आसान हुयी
"बेसुध" भये बेपरवा, मिष्ठी की माँग से
"शिवाम्बु-पान – नुस्खे से जीवनी सुधर गयी ।।2।।

"न-राशन", नराशन (नर + अशन), नरासन (नर + आसन) सभी
मिल गढ़ते "त्रिमूर्ति" शिव-मूर्ति शासन की
गज-भर छाती पर सवार, ताव भरी मूछों तले,
अधरों से धरे-घिरे-दाँत न दिखाइये ।।3।।

न उधार किश्तों में, अब केवल कैश डाउन,
"धरा-धर" बनके, लखनऊ में "बेसुध" मुस्कराइये ।।4।।

— नवम्बर 93

## शास्त्री निधन

सहज बात हृदय सरल बहादुर थे लाल विरल,
शास्त्री जी हुए अमर पी हिन्द पाक युद्ध गरल।
क्षीणकाय अल्पबसन छोड़कर, यह क्षिति सदन,
शास्त्री ने बसा लिया स्वर्ग में नया वतन।
मरने का अल्पवय, कारण है देवदय,
स्वर्ग में हुआ अब नक्षत्र एक नया उदय।
स्वर्ग में छिड़ गया, जब देव दनुज महासमर,
करने को शान्ति पाठ, चल पड़ा वह कस कमर।
कंठ तरल् नयन सजल, शोक विकल, लोक सकल,
भारत के "बेसुध"-जन, करते हैं यह विनय,
शास्त्री को वापस दो होता यदि पुर्नजन्म।

12-1-66

## नया साल

एक तार हो एक धार हो, जीवन में कुछ नया जाग हो।
हिय में ऐसी लगी लाग हो, कि श्रम की श्रद्धा ही सुहाग हो।
मन मंथन से उठे झाग जो, धवल करे निज धरा दाग को।
कवलित कर ले काल नाग को, मनुज हितों की ऐसी आग हो।
नये साल में नया धाम हो, बना हुआ जो धिग तड़ाग हो।
खिलता जिसमें पुष्पराज हो, सुरभित जिसका नित पराग हो।
हर तरंग में यही राग हो, सुकृति ख्याति से पगी पाग हो।
"बेसुध" की बस यही मांग हो, नये साल में नया फाग हो।

# खण्ड-२-पद्म-पराग

## अनुक्रमणिका



———

नये साल की नई क्षितिज में ऐसा नया विहान है।
सभी सुखी निरोग बने सबका ही कल्याण हो।
नहीं कहीं पर किसी समय भी दुःख का किंचित भाग हो।
धुले मलिनता मन की सबके सिंचित नव अनुराग हो।
1-3-66

## स्वर्गादपि गरीयसी जननि अवनि भारती

विलक्षण-विपुलता विविधामयी
अनेकता में एकता टटोलती हुयी
माला के, मनकों में समोये सूत-सी
जनगण-कण्ठस्थ करे देव-भारती ॥1॥

सकल-समष्टि-मध्य-व्यक्त व्यष्टि की
'उत्तिष्ठत' काया-विच, 'जाग्रत' मन आश्वस्त
'वरान्निबोधिता' तटस्थ-बुद्धि-सारथी
'वसुधैव-कुटुम्ब'-सम-व्यास-भाष-भारती ॥2॥

भारत सदा 'भा'-रत दिव्य-प्रभापुंज से
भारत-सिर 'भार'-सकल विश्व का सहे
भूर्भुवस्वलोक-व्योम-व्याप्त 'ॐ'-आरती
भरत-भाव-भासित-अखिल विश्व-भारती ॥3।-

'सर्वभूतहितेरताः' वृद्ध-युवा-वाल-भारती
सकल धर्म-सद्भाव-सुहृद्-राष्ट्र-भारती
'बेसुध'-जन-मानस रमे 'वन्दे मातरम्'
स्वर्गादपि गरीयसी जननि अवनि भारती ॥4॥

## नव वर्ष की कामना

नये वर्ष की नयी कामना यद्यपि अपना वर्ष नहीं है
अपना केवल पेट पालना जीवन का आदर्श नहीं है।
सबका ही घर बसता जाये क्या यह उचित विमर्श नहीं है
सबके ही हित में मर जायें, क्या यह चरमोत्कर्ष नहीं है।
अगली संतति ही मिट जाये, सृष्टि का निष्कर्ष नहीं है।
सह-जीवन का भाव बनाये, तो कतिपय संघर्ष नहीं है।
चुम्बक की पहचान निरन्तर ध्रुव-सम में आकर्ष नहीं है।
"बेसुध" को सुध कैसे आये जब तक सबको हर्ष नहीं है।

31-12-65

## नव वर्ष की अभिलाषा

निषकंटक हो राह पुष्पमय राका लाये नया सबेरा
गुंजित तेरे पथ पर होवे गान मधुप सा यह मेरा
पथ की तेरे हर कठिनाई बढ़ने का संदेश तुझे दे
सुजनों की मधुमय अभिलाषा जीवन को ज्योतिमय करदे
आंधी आये तो ले जाये अशुभों का अंगार
नवल वर्ष की नयी कामना जीवन में आशायें भर दें
स्नेह सिक्त यह गीत हमारा रागमयी हर भाषा करदे
"बेसुध" को सुध मिले सभी सोये उठ जागें
सुख सम्पति औ आरोग्य यही प्रभु से वर मांगे।

2-1-66

# सपनों का संघर्ष एवं समीकरण

डा० पद्माकर द्विवेदी "बेसुध"

मेरे मन में सँजोये अनेक नेक सपने हैं,
सभी अप्रेरित खुद देखे हुए अपने हैं।
मगर उसमें "द" की दखलदाजी से,
ऐसी "द"-रार पड़ जाती है कि "उर"
की संज्ञा उ-"द"-र में बदल जाती है,
उदरानल में सपनों की भस्मी बन जाती है ॥1॥

दया, दाम, दान, दुआ का समानार्थी "द"
"उ" एवं "र" नामक पाटों की चकिया में,
ज्वलनशील "हविष" बन जाता है
सब उमँगों की अरणी निगल जाता है ॥2॥

उर की उड़ान उलझनों की जननी है
अतएव उसकी उर्वरता, निरर्थक, बेमानी है
उदरस्थ "उदारता" सार्थक सिद्ध आसव है
उर-उदर-मध्यस्थ-मन-मुद्रायें मलिन पानी है ॥3॥

उर की उर्वरता, उदर की उदारता,
मन की मलिनता, तीनों हीं,
मिलकर सगुण-त्रिमूर्त्ति रचती हैं,
देह-मन-बुद्धि के मूल में,
तम-रज-सत्त्व-जनित त्रिवेणी को,
सर्व—भूत हिते रत रखती है ॥4॥

· सरयू संदेश अक्टूबर 93

# साजन बनाम प्रेरणा

मिलता सभी कुछ अगर प्रेरणा से,
तो न फिर जरूरत भाजन की होती ।
ग्राहक न होता, वाहक न होता,
न चाहत कभी अवगाहन की होती ।
सिद्धि के लिये साधना है जरूरी,
फिर भी जरूरत साधन की होती ।
भले ही गुरूजी की आशिष न होती,
पर "बेसुध" को घुटन पालागन की होती ।

4-3-66

# होली में हिमापात

हमको थी आशा कि आप अबतक,
जरूर ही हमारी टोली में होंगी ।
सारी सतरंगी तिहारी मिलेगी,
अथवा गुलालों की चोली में होगी ।
न साथ देती गम में फले ही,
मगर साथ होती ठिठोली होंगी ।
हुआ है हिमापात जब से सुना है,
नहीं आप "बेसुध" की होली में होंगी ।

था उनको पापा ने उनके बुलाया, औरों को राजा ने उनके बुल
बाकी को आजा ने सबके बुलाया, होली में बाजा "बेसुध" ने बजा

5-3-66

## बिरह बेला

मुझसे यह गलती हुई बार-बार,
कि बात खुल के न तुम से होती।
शिशु की समस्या न ऐसी बड़ी थी,
अगर न बढ़ी बात पालन की होती।
रोटी की ऐसी समस्या नही थी,
अगर न चली चरचा माखन की होती।
घर की समस्या भी सुलझ जाती,
अगर न खडी उल्का आँगन में होती।
न हो सकता रहना अकेला भी दूभर,
अगर कुछ इनायत महाजन की होती।
सरल तो सरकना दिवस का कुछ ऐसा,
मगर रात सारी नागिन सी होती।
विरह के क्षणों की मनो-भावना में,
सिसकते हैं आँसू ढुलकते हैं मोती।
सुपन में सितारों की गिनती हैं करते,
जब दुनियां पड़ी "बेसुध" हो के सोती।

-3-66

## अश्रुधारा

बरसे तेरी आँखों से जब अश्रु की धारा,
हिल जाय हिमालय भी, घुल जाय कलुष सारा;
दुनिया को रिझाने का यह ढंग बड़ा न्यारा,
फिर क्यों न बहक जाये एक "बेसुध" बेचारा।

ल
ाध

नेगम/ 25-2-66

# भ्रमर-गीत

मैं गुन-गुन, गुन-गुन करती हूँ,
नित भ्रमर-भैरवी भजती हूँ,
मैं मधु पुष्पों का चुनती हूँ,
कलसी भर भर के रखती हूँ ॥१॥

मैं पिक-वयनी कुल की हूँ,
पंचम-स्वर कूका करती हूँ,
मैं अपने धुन की पक्की हूँ,
मत समझे कोई सनकी हूँ ॥२॥

नित नूतन रचना करती हूँ,
स्रष्टा की ललना लगती हूँ,
मैं विष्णु की ठगिनी हूँ,
औ शम्भु की भगिनी भी ॥३॥

मैं काल-पुरुष की प्रेयसि सी,
निविड-निशा-भव रजनी हूँ,
मैं नील कण्ठ की सजनी हूँ,
हालाहल विष हरणी हूँ ॥४॥

मैं राघव राम की रमणी हूँ,
मै यादव कृष्ण की रुक्मिनी हूँ,
मैं कामदेव की कामिनी हूँ,
जन-गण-मन की यामिनी हूँ ॥५॥

मै कश्यप की अदिति हूँ,
औ आदित्य की जननी हूँ,
"वेसुध" की घरणी हूँ,
हरिजन हित भव तरणी हूँ ॥६॥

## प्रश्नोत्तर

संकट में है देश ज्यादा मत खाना,
पहले अपना फर्ज पढ़ना और पढ़ाना।
मुश्किल है मेरे मीत बिना खाये रह पाना,
भरता जिसका पेट उसी को साधे तराना।

1-66

व्रत और दावत का अनिवार्य है समतोलन,
क्षत स्पंद उर में ज्यों होता अति कोचन।

1-66

## नारी के प्रति

ृ की देवी लक्ष्मी हो तुम अन्नपूर्णा सुखद ललाम,
ा की वीणा को चुपके से झंकृत कर देती अभिराम,
खत मनुज के सूने मन पर अंकित करती आशा गीत,
बेसुध'' स्नेह हीन जीवन में सदा बसा देती नव प्रीत।

)54

## बाल विधवा

ीवन की सुमधुर हाला में तुम हो एक विरह का भाग,
ीवन के कोमल वसंत में खेला द्रवित रक्त का भाग,
ह समाज है एक नकुल सा, नागिन तुम उदंत इसकी,
की हुई है राख पर्तो से, मलिन आग तेरे मन की,
भी कभी "आशा'' कहती है कैसे तू होगी सधवा?
व 'सतीत्व, उत्तर देता है "बेसुध'' हो तू रह विधवा।

1954

## वय संधि

स्पर्धा में सेना-पति पद की, रह सके उरोज दोनों न आपे में,
नयना ले रहे मत कर्ण को निकटता में,
करें क्या आज छापे में ?
पलकों में चढ़ तीर अलकों के,
बींधते सहरा हिय हय हर एक झापे में,
जब "बेसुध" यौवन ने पायो राज, शैशव के बुढ़ापे में।
1956

## जलती मोम बत्ती

शक नहीं इसमें तोला माशा या रत्ती है,
लगती जरूर वह छुई मुई की पत्ती है,
विदुषी मगर वह साक्षात् सरस्वती है,
"बेसुध"-मार्ग-दर्शन हित "जलती मोमबत्ती" है।
18-3-66

## "ट्रबल मेकर"

बिटिया न भगाई उनकी, बहन भी फुसलाई नहीं,
निपूतों की झोपड़ी में चिनगी परचाई नहीं,
चोर की दाढ़ी में तिनका यिहारने की सजा,
ऐसी बड़ी, की पीठ पै 'कष्ट कारक' चिप्पी चिपकायी गयी।
24-7-70

## उपनाम

हो नेक ख्याली या नेक-दिली, पर इश्क बड़ा बदनाम तो है,
सहजीवन होता देखा नहीं, बस जाना यही संग्राम तो है,
"बेसुध" कह लो या "बेगुन" भी कहो, कुछ और नहीं गुमनाम तो
वे चाहे मिले, चाहे न मिलें, पर उनका दिया उपनाम तो है।
मार्च 1966

# खण्ड—३-पद्य-प्रसंग

## अनुक्रमणिका



———

कहल

भेद

बेकल

जड़

वी

अजि

कड़े

मय

अन

बा

आ

म

भ

क

स

ह

# चुनाव-चर-खा

कहलाने एकहि वसत, राजा, ठाकुर, जाट,
भेद भुला सब ढो रहे, काँधे - चढ़ा - चुनाव ।। १ ।।

बेकल जनता के घटक, टूटें पुनि जुट-जात,
जड़ सारे जंगम भये, परसि चंचला पाँव ।। २ ।।

वी पी. विलग विलाप कर, शेखर-शेष-विना बेबाक,
अजित लगें अज-इति के, मुतवातिर मिमियात ।। ३ ।।

कड़े मुलायम पड़ गये, खाइ "ओट" के घाव,
मय-भा वाई बू-मयी, व्यर्थ बहावै आँसु ।। ४ ।।

अनमन "अजगर" देखि के "भालू" लहू-लुहान,
वाम मुखी "वानर" विके, जब से "खुली बजार" ।। ५ ।।

आर्थिक उल्कापात से, चढ़ते बढ़ते भाव,
मन - मोहन - मुद्रा - मुई, महँगाई की माँद ।। ६ ।।

भाव भाइयों का वली, जैसे अंगद पाँव,
कटी पतँगे "काइयाँ", विकट "भा-जपा"-दाँव ।। ७ ।।

सफल-काम चुनाव हित, कसी न कड़ी लगाम
छले-वले-वा कौशले, कु-र्सी ली हथियाय ।। ८ ।।

भीमकाय वामन बने, याचि "वोट" की छाँव,
बहती गंग–चुनाव में, धो डाले सब दाग ॥ ९ ॥

मत गणना की मार से, "बेसुध" जन बिल्लात
मोटी खाल-महिष-राजसी, रंच न जुम्बिश खात ॥ १० ॥

नौकर-शाही नुस्खा नकद, "कोउ राजा बनि जाय
चाकर की चाँदी सदा, चेरी कबहूँ न हानि" ॥ ११ ॥

—सरयू संदेश नवम्बर–93

## द्विनयन दर्शन

दृष्टि-पटल पर विन्दु अनेक, रखते युगल बिन्दु हर एक,
दृष्टि-केन्द्र के दक्षिण-बाम, उनके होते अगणित नाम,
नासिक हैं जो नासा पास, कर्णिक रहते हैं ढिग-कान,
कर्णिक सखा बसैं नासिक में, दे उनको अपना आवास,
कैसा अजब विरोधाभास, कहते युगल बिना सहवास ।
है ऐसा भी बिन्दु एक, जिस पर चेता करे प्रवेश,
जिसका रहा न जोड़ा शेष, कहते उसको अन्ध प्रदेश,
क्या इसका है ऐसा श्लेष, युगल हीन है अन्धा वेश ।
बिन जोड़े के अगनित क्लेष, गर्तमाप की हानि विशेष,
विकसित करता नहीं त्रिनेत्र, वियुग बिन्दु पर पड़े जो रेख
देखें दो दो, वस्तु हो एक, वन जावें यों चिल्ली-शेख ।
स्तंभ-बिन्दु पर करते नेत्र, जां तक देखें एक ही एक,
ऐसा है बन जाता क्षेत्र, बैठी तितली लेकर टेक,
कहते इसको हैं रवि पक्ष, बिन्दु स्तंभ पर इसकी कक्ष,
इसके भीतर दर्शन दक्ष, यह वैशेषिक द्विनयन-दर्श ।

# चलिये लाल तिकोने

सीमित सारे साधन, सीमित सबका अंश,
सीमित हुई रियासतें, सीमित प्रीवीपर्स,
सीमित है भूखण्ड यह, सीमित है ब्रह्मण्ड,
सर्वोदय के लिए जरूरी, होना सीमित वंश,
बीज अधिक नहि बोने
चलिए लाल तिकोने ।। १ ।।

भूखा काम नहीं क्या करता, यही याद कर भूख घटायें,
भूखे की तादाद घटायें, भोजन और अधिक उपजाये,
नहीं हो रहा है यह सब जब तक, तब तक सीमित वंश बनायें
पैर पसारे केवल उतने, जितने मिले बिछौने,
चलिए लाल तिकोने ।। २ ।।

पशु तो केवल खाते सोते, डरते मैथुन करते,
मनु ही केवल, जो इन सब पर, संयम बरते,
कर न सके जो संयम-नियम, उनको ही पशु कहते,
पशु भी ऐसे सींग-पूँछ-बिन, जो हैं चरते फिरते,
बन सके न जो लोग संयमी, उन्हें बुलाते लाल तिकोने,
चलिए लाल तिकोने ।। ३ ।।

सच्चा केवल वही धर्म है, जिससे गतिमय सकल विश्व है,
जग की गति में बाधा जिससे, वही पाप है वही अधर्म है,
धरती चलती रहे, इसलिए सीमित परिवार बनाना सहजे कर्म है,
सर्वोदय का सूर्य बढ़ रहा, निज अरुणाई से इस जग का
लगा पीत रंग धोने,
चलिए लाल तिकोने ।। ४ ।।

बात पुरानी नए विशारद एक वैद्य जी,
मानस तट पर लगा रहे थे ध्यान,
हंस वहाँ के बोले 'कोरुक' 'कौन निरोग है',
समझे वैद्य प्रश्न कर रहे धन्वन्तरि साक्षात्,
कम खाये जो हित में खाये हो इन्द्रिय से बलवान,
कहा वैद्य ने, वही निरोग है वही स्वस्थ्य संतान,
क्षुधा पिपासा काम ग्रस्त तो करते काम घिनौने,
चलिये लाल तिकोने ।। ५ ।।

हर दो विपल में खाना वाला बढ़ जाता नवजात,
तेरह मिनट में ही बस जाता पूरा ग्राम समाज,
पांच घड़ी घटती है केवल, बसने में इक ब्लाक,
प्रतिदिन मंडल एक बढ़ रहा, यह कै उत्पात ?
बढ़ा न भारत सुई नोंक भर दबा ले गए चीनों-पाक,
तैंतीस कोटि देवता हो गए, दो ऊपर पचास,
बावन अंगुल बौने
चलिए लाल तिकोने ।। ६ ।।

कहते ठीक विनोबा जी भी हर मुख लेकर आता कर दो,
पर वे कर कब कर पाते, ऐसा कुछ कि भरे उदर दो,
सोलह शरद संभालो जब तक, आ जाते हैं नये उदर दो,
और सृष्टि क्रम चलता जाता, बीच इसी के हाथ पुराना चले स्वर्ग को,
क्योंकि आयु यहाँ की औसत, है केवल इक्कीस और दो
जब तक किया अवधि नहीं बढ़ती बढ़े न पूँजी पैसे सोने
चलिए लाल तिकोने ।। ७ ।।

हिन्दुस्तान गुलाम हुआ था, कूटि-नीति से, कूटि-नीति से,
भारतवर्ष आजाद हुआ था, राजनीति से राजनीति से,

वही हिन्द कंगाल हो गया, अर्थनीति से अर्थनीति से,
ग्यारह सहस करोड़ खा गए, सेठ मीत जे सेठ मीत जे,
दो सौ रुपए कर्ज लाद, हर एक शीश पै, एक शीश पै,
भगत सिंह, आजाद, सुभाष की संतानों को ऋण ये कब तक ढ़ोने
चलिए लाल तिकोने ।। ८ ।।

हर हजार पर चालिस बढ़ते, पर केवल इक कोडी मरते,
इस प्रकार हर साल निरंतर, बीस सदस्य सहस पर चढ़ते,
कोई नहीं समस्या होती, यदि औसत से खेत निकजते,
या वे काफी अन्न उगलते, मिलते पूरे कपड़े लत्ते, दारु दवा पुस्तक औपत्ते,
किन्तु गणित से बढ़ती चीजें, आबादी बड़ती ज्यामिति से,
मनु की संतान हुई यह, हो गए कुकुर-शूकर-छौने
चलिए लाल तिकोने ।। ९ ।।

भारत में केवल आठ फीसदी अन्न का अभाव है,
भूखे रहे आठ हर सौ में, क्या यही समाज वाद है ?
या कि हर कोई आठवें दिन, एक ही वक्त खाये
या हर पखवारे व्रत, रखना ही इलाज है ?
आ अन्न मँगावें बाहर से, बोझ ऋण का उठावे,
या जमीन हथियावे, उपज बढ़ावे, या मौत के शिकार हों ?
आसान तो यही है, कि उपज से आबादी का कदम ताल हो,
जबतक यह न हो, कम से कम आबादी की रोक थाम हो ।
नही कोई अब अवसर खोने
चलिए लाल तिकोने ।। १० ।।

हर हजार पर बीस लोग, यदि सीमित परिवार करें,
आबादी स्थिर हो जाए यह पंडित विद्वान कहे,
हर सौ में सोलह ऐसे जिससे है परिवार बढ़े,

इस प्रकार से हर हजार में, ऐसे एक सौ साठ मिले,
एक करोड़ नसबन्दी होवे, हमको ऐसा पाठ मिले,
नसबन्दी सौ एक करे, तो दिन में डाक्टर लाख लगे,
यह सब हो सकता है, जब सभी लोग तैयार मिले।
इस तैयारी में ही अगते "बेसुध" टुटके टोने
चलिए लाल तिकोने ।। ११ ।।

67-68

## "डे-टू-डे इम्तिहान"

मैडम के श्वान के देहावसान पर,
है सहानभूति इन द्विशत प्रान की,
प्रभु से है यही विनय, करके, हे देव! दय,
देना न उसे योनि कभी मानव संतान को,
मानुष तन मिले, तो होवे न चाहत उसे,
पढ़ने की कदापि मेडिकल विज्ञान की,
क्योंकि "बेसुध" नादान को नही है तनिक भान,
होती है बला कैसी "डे-टू-डे इम्तिहान की"।

1954

## "स्वामि भक्त कुत्ता"

माना सबसे स्वामि भक्त होता कुत्ता है,
मगर नही, मानव जीवन इतना सस्ता है,
कि मनु की संतान भले भूखों मर जायें,
मगर रहें "बेसुध" वे वे कुत्ते, जो खाकर गुर्रायें !

## जरूरत

अगर मिलती मंजिल अपनी ही सबको,
फिर क्यों जरूरत सिफारिश की होती ;
पौवा न चलता न बढ़ता किलो ही,
अगर कद्र सेर चालीस की होती ;
भतीजा भटकता, न अटकता ही भाई,
अगर न चलन तेल मालिस की होती ;
मिलावट न होती, सजावट न होती,
अगर राय सबकी न पालिस की होती ;
खतम होती हर तरह की बुराई,
अगर चाह सब को निखालिस की होती ;
भुगतते सभी फल कर्मों के अपने,
फिर क्यों जरूरत गुजारिश की होती ;
"बेसुध" भी ऐसे बन कर बिगड़ते,
न बात उनकी नालिश सी होती ;
होता कठिन न व्यय का चलाना,
फिर भी जरूरत किफायत की होती ;
मिलता वही जो लिखा भाग्य में है,
फिर भी जरूरत शिकायत की होती ;
होता जरूरी न सबको मनाना,
फिर भी जरूरत इनायत की होती ;
बँधकर बिछुड़ना न आसान होता,
"बेसुध" फिर फिर हिदायत भी होती,
मिलता सभी को अधिकार अपना,
तो जनता कभी न विष-वृक्ष बोती,
मिलता सभी को भोजन समय पर,

होते अगर सब के पोता और पोती ;
मिलती बराबर चादर सभी को,
तो दुनियाँ पड़ी आज मुँह ढक के सोती ;
मथता है माथा मेरा उसी क्षण,
दिखती अगर एक भी आँख रोती ;
मानो न मानो दुनियाँ के लोगों।
"बेसुध" की बातें न कोरी न थोथी अल्पवय कर्मयोगी,

कर्मलीन को फल की चाहत, यदि न कभी सवार हो,
राज्यपाल मुख्यमंत्री से बढ़, दिल्ली का दरबार हो,
तीन लोक में बसे प्रजा, जब कर्मठ की सरकार हो,
स्वर्ग बुलाते अल्प आयु में, प्रभु को ज्यों दरकार हो,
"बेसुध" की यह बड़ी विडम्बना, कैसे निर-आधार हो।

6-3-66

## कश्यप-प्रिया-अदिति भारद्वाज

किशमिश - काजू - बादाम - पिश्ता,
खाकर चुस्त - दुरुस्त - मस्ता ,
स्तुति - सिद्ध, मटक - मुसका,
भृकुति - विलासी, नाज - नखरा ।।१।।

देवी – सखी, संतुष्ट सरला,
क्षणे रुष्टा औ पले – तुष्टा,
अदिति - हिय - हारी–कश्यप-मिश्रा
इक-दूजे हित "बेसुध" रहे गुइयाँ ।।२।।

———

## खंजन नयन

पेशियों से है घिरे दोनो नयन, जो करें मानस लहरियों का चयन,
डोलते रह तेजो हर क्षण हर समय, जागते करते न जो किंचित शयन,
बक्र कहलाती जो करती अपहरण, ऋजु कहें उनको जो करें संकलन,
उदपेशियां करती है अन्तर नमन, अधिपेशिया करती है बाहर गमन,
इन पेशियों में है कुछ ऐसा चलन, एक बढ़ती तो दूसरी होती दमन,
पीछे हटे कमजोर बन, आगे बढ़े सहजोर बन,
करके सदा बलिदान तन, सीधे करें टेढ़े नयन,
वहि-ऋजु अधिऋजु औ उद्वक्र, अन्तऋजु उदृजु औ अधिकव्र,
उदगम जिनका कंडर वृत्त, छोड़ एक केवल अधिबंक,
पेशी ऐसी होती पष्ट स्रोत है जिसका अधिपट अक्ष
अपना अपना चल कर पंथ, करें गोलकों से संस्पर्श
आगे ऋजु हों पीछे वक्र, गति हो "बेसुध" सीमित चक्र।

## नेरु

सोम घुलता रहा भानु उबलता रहा,
व्योम दिन रात चिनगी उगलता रहा,
रोम जलता रहा, औ धधकता रहा,
नेरु अपनी तरंग में थिरकता रहा।

जब बसेरा किसी का उजड़ता रहा,
या किसी का दिवाला निकला रहा,
औ किसी से जमाना उलझता रहा,
"बेसुध" अपनी उमंग में उछलता रहा।

25-3-66

## आज की ताजा खबर

बड़े अन्दाज से हाथ जो फेरा तन पर,
लाश एक आमद हुई जो थी कभी मच्छर।
"मैंने नहीं मारा क्यों' मर गया खुद ही,
मैंने नहीं मारा", थी सदा आई लब पर।
किसी ने कहा कि उन पर जान दे सकते हैं केवल मच्छर;
दूसरे बोले "नही तरस खा के उनपर,
विचारे का हो गया था जीना दुष्कर"।
तीसरे ने जोड़ा "होगा हनुमान उनके राम का,
आया मशक बन कर";
चौथे ने कहा "मदन" था "बेसुध" कि वे हैं नील कंठ,
साधना को परखने चला, ले मच्छर शर,
"कौन कहता है कि मर गया ?" था यह पंचम स्वर,
उसे तो मुक्ति मिली अमृत की घुट्टी पीकर,
किया जन्नत की सफर, आज की ताजा खबर।

मार्च 1966

## बढ़ता देश

सारा जमाना जब कह रहा,
मेरे कहने को क्या बच रहा ?
"बेसुध" भले आभास न हो,
देश घोंघा-गति से बढ़ रहा।

5-2-85

# आस्तीन के साँप

जब सर उठाते सारा जगत उठा लेते,
कुण्डली मार के सेज हरि की बना देते,
गले लिपट शिव को समाधिस्थ करा देते,
आस्तीन वाले को साँप "बेसुध" चबा लेते।

सर पर रख "शेष" धरती को उठा लेते,
कुण्डल की कर सेज विष्णु को सुला देते,
बन करके कंठ हार भोले को भुला देते,
"बेसुध" आस्तीन के साँप मौके पर दगा देते।

भक्षक हैं चालू बड़े, रक्षक भी चलाऊ हैं,
जगत है-चलाय-मान औ न कुछ भी टिकाऊ है,
तक्षकप तपैं न क्यों, जब खुले दूध-प्याऊ हैं, ?
"बेसुध" हो गाहक बढ़े, जिधर सब कुछ बिकाऊ है।

शैव से सुशोभित नील कंठ के गले में,
मानो पड़ी माला नगन जड़ाऊ है,
वैष्णव से विभषित फन जिनके,
अंकित हरि को खड़ाऊँ है,
विषधर भी विष-वमन भूल जाते,
वाणी में असर ऐसा मोर के मिठाऊ है;
मगर होते न "बेसुध" आस्तीत के साँप,
रहते वे सदा घात में कटाऊ हैं।

नाग पंचमी को करें स्वागत,
दधि-अक्षत से दूध के सकोरे से,

रक्षक मात्र एक औ भक्षक अनेक हैं,
तक्षक अनादि अंत लगते बहुतेरे से ।

साँप के आने जाने का डर नहीं,
भय है उनके आस्तीन में बसेरे से;
सब मिलकर यज्ञ जनमेजयसी करें,
जैसे ही बजे बीन "बेसुध" सपेरे से ।

## टिटनस

विकट रोग ऐसा इक टिटनस,
ऋजु मानव को कर दे धनुसम,
समुख-वाम-भुज वा दक्षिण-मुखा',
उनत पीठ कर, वा उनतोदर' ॥ १ ॥

व्यंग चतुर्दिक कर हर अवयव
निकट करे रोगी के पद शिख
करे अलोकिक पेशि – स्फुरण'
हो प्रवाहमय जिमि विद्युत्-कण ॥ २ ॥

होता ऐसा यह विकराल,
छोड़े कभी न बूढ़े वाल,
खींच अधर दिखलावे दाँत,
जैसे वेदन - मय हो हास, ॥ ३ ॥

सबसे करे न सम व्यवहार,
इसीलिए इसके वहुनाम,

शिशु में यह टिटनस नवजात,
जननी में टिटनस प्रसवान्त,
यदि कोई टिटनस लघु कालिक,
दज मिले टिटनस अतिकालिक
सिर में हो टिटनस कापालिक,
अन्य कहीं टिटनस स्थानिक ।। ४ ।।

कारण इसका इक जीवांणु,
वसे निरन्तर जो गो–आँत,
गोमल संग करके प्रस्थान,
को बालुका–वण-ढिग वास ।। ५ ।।

लगे भुख न इसको प्यास,
रहे खोल में बिना बयार,
सके शीत न उष्मा मार,
फिरे चतुर्द्रिक ले राजयान ।। ६ ।।

छद्नवेष करते यो विचरण,
व्यस्त हे जीवन के क्षण क्षण,
वृहद् घाव से अथवा अणुसम,
कर प्रवेश बदले यह निज तन ।। ७ ।।

व्रण में अपना खोल उतार,
करे सदा संतति विस्तार,
सहस कोटि का नित निर्माण,
बन बहुसंख्यक करे प्रहार ।। ८ ।।

दिब्स एक षोडष पर्यन्त,
और कभी तो वर्ष अनन्त,

गुप्त लुप्त रह बिन प्रपंच,
प्रबल प्रखर हो कसे प्रत्यंच ॥ ६ ॥

इस प्रकार लेकर के सत्ता,
रोगी को यह करे निहत्था,
टिटनस की यह अजब व्यवस्था,
कहें चिकित्सक सुप्त अवस्था ॥ १० ॥

व्रण में कर निर्माण वहि-विष, तन में जो होता है गति मय,
पकड़ लसीका-चेता-संहति, मेरु-रज्जु करता यह शासित ॥ ११ ॥

यम कहिए या दूजो काल, प्रतिशत चालिस करे निढाल
प्रिय भोजन इसका नवजात, जिन्हें न छोड़े यह सह-प्राण ॥ १२ ॥

हनुताल से प्रथम फुरण तक, दिवस एक ही कटे अवधि यदि,
सप्तवार इक समय सुप्त अपि, रोक सकें नहिं विष्णु-शभु-विधि ॥१३॥

टिटनस का उपचार बहुत विधि, कुछ वैशेषिक कुछ लक्षण हित,
जिनका है निष्कर्ष महज इक, निरुजकरण से सुलभ निवारण ॥१४॥

नकछेदन हो या कनछेदन, शल्यल हो या सूचिक वेधन
करें प्रयोग यंत्र वे केवल, पके विपल शत-शत हों जो जल ॥१५॥

कृषक बंधु हों, वा श्रम वंश, व्रण का जिनमें संभव-अंश,
आहुति हो या पादुक दंश, लगे अवासि इक ए० टी० यस० ॥१६॥

यदि चाहें सक्रिय अवरोध, तो टॉक्सायड करें प्रयोग,
"वेसुध" दुहरावें पचपन रोज, मास दिवस जब साल हो रौंद ॥१७॥

— — — —

# ऐसा लाल तिकोना

लाल सदा खतरे की घटी, लाल क्रास मदद की रस्सी,
लाल वर्ग एक रूसी बस्ती, लाल किले की अपनी हस्ती।
लाल जवाहर थे पंडित जी. लाल बहादुर थे शास्त्रीजी,
"लाल, बाल औपाल"-तिमूरत भी भारत के श्रमर क्रान्ति की।
लाल लगोंटी हनुमान की लगेन उन्हे दि्ठौना,
ऐसा लाल तिकोना ।। १ ।।

लाल क्रान्ति का लक्षण लगता, लाल उषा से सूरज उगता,
लाल रुधिर से जीवन चलता, लाल पताका श्रम प्रतीक सा,
भगवा-ध्वज होकर दो टुकड़े, बनता लाल तिकोना
ऐसा लाल तिकोना ।। २ ।।

तीन शक्तियाँ त्रिभुज रूप में स्थिर होतीं,
यह सिद्धान्त अकाट्य भौतिकी,
स्थिरता हित बनी तिमूर्ति त्यों, सृष्टि की,
उत्पादक-पालक-संहारक ब्रह्मा-विष्णु-महेश की
तीन लोक का घोतक हो गया, हर एक इसका कोना
ऐसा लाल तिकोना ।। ३ ।।

चल रहा वादा-विवाद, देर से कर सके ब्याह,
हो नियम से गर्भपात, या कि फिर हो महासमर,
महामारी या महाकाल, या कि होवें सिपाही लाल,
उतारने को मौत के घाट, अन-चाहे बूढ़े और जवान,
"मौत-से-तंग" का यह पुराण, "बेसुध" नही है प्रचलित होना
ऐसा लाल तिकोना ।। ४ ।।

# बाबा-पोती-शिशु-गीत

—'बेसुध' बाबा-पोती 'अदिति'

एक ही अनार था, सौ बीमार थे,
आम तो तमाम थे, सारे ही इनाम के,
न किसी के काम की, गुठलियों के दाम थे।
इमली की खटाई, ईख की मिठाई से
हलवाई ने बावन व्यंजन बनाई,
उल्लू ने उड़ाई, ऊद-बिलाव ने गँवाई।
उल्लू उड़े अँधेरे में, पकड़ शिकार पंजे में,
ऊद बिलाव घुसपैठा, मछलियों के मंझे में।
एक्का वाला ऐनक नाक पर चढ़ाये,
ओखली में, औरत का सिर देता जाये।
पूरा पाठ पढ़के, भर अँगूर अँजुरी में,
'अहा अहा' बोल "बेसुध" चहचहाये।

रंग-बिरंगी तितली, फूल कर टिक ली,
सारा रस पीकर, दूर - दूर उड़ली;
बेवफा तितली, मतलब की पुतली,
'बेसुध' फूल फसली, प्यार निभाये असली।

ऊपर थी चील, नीचे थी झील,
पानी से मछली, जोर से उछली;
चील ने मारा झपट्टा,
ले गई रोहू का बच्चा,
नोंच - कोंच कर "बेसुध" करके,
खा गई सारा समुच्चा।

# खण्ड-४-पद्म-प्रमोद

## अनुक्रमणिका



———

# जोड़ो जन-गण का मन

(—डा० पद्मामर द्विवेदी)

अटपट से जब लिपटे लटपट, खुसुर-पुसुर कर गढ़ते झटपट,
बात बेतुकी बाँटकर चटपट, "खल-कीमत" हित करते खटपट ।।१।।

कभी "आम" को "खास" बनाकर, उज्जवल दिन को रात बताकर,
बीस फी सदी आधा सच रख, झूठ मिलाते अस्सी प्रनिशत ।।२।।

निज घोड़ों को घास दिखाकर, बहुरूपी हुलिया अपना कर,
अपना उल्लू सीधा करते, सदा गधे को बाप बनाकर ।।३।।

अपने मुख से खुद गुन गाकर, बायें हाथ का खेल दिखाकर,
चुटकी में नामा हथिया कर, बेढब का दिखलाते करतब ।।४।।

छोड़ो स्वांग ढकोसले बेढव, ओढ़ो मत छल-बल का कौशल,
रस कु-रसी के सारे तजकर, हर लो "हरि-जन" का उत्पीड़न ।।५।।

जीभ चाम की फिसल न जाये, अतः सदा बत्तीसी भीतर,
कसी लगाम रख जिह्वा पर, निज वाणी को कर लो संयत ।।६।।

छोड़ो सब राजनीति की हलचल, दूर करो सब दल का दलदल
मोड़ो अ-नेक जाति की हरकत, जोड़ो जन-गण का मन "बेसुध" ।।७।।

— —

5-7-94

# नारद कमीशन

ब्रह्म लोक में बैठक थी थे, कुर्सी में भगवान्,
प्रश्न-प्रहर की बेला में एक दिन हुआ सवाल।
मृत्युलोक में बढ़ता जाता निशिदिन भ्रष्टाचार,
सर्वे कर समिति बतलावे क्या इसका उपचार?

नारद जी के मातसत बैठा एक कमीशन,
चर्चा सब अखबार में कर दी दे विज्ञापन,
जानकार या भाष्यकार हों जो प्राणीजन,
प्रकट करें नित निर्भय होकर अपना वत।

मिले भेंट में पहली मोटे ठेकेदार,
हर ठेके पर बदलते, जो इक मोटर कार,
टेण्डर देकर कर रहे जो सारा व्यापार,
"परसेंटेज" की आड़ में कर सोलह इकचार।

आए अगली भेंट में जो अफसर श्रीमान्,
करते घोड़ा घास का वे सम्बंध बयान,
फिर भी उनकी समझ में आता नहीं निदान,
जनता कहती सुनती क्यों थी उनको बेईमान?

मिले बड़े बाबू दफ्तर के तिसरी भेंट में,
"पान तमाखू" रखें सदा जो अपनी टेंट में,
लेते थे" "मामूल" 'दाल में नमक सरीखा'
बदनीयत से लोग, कहें "खाते जूता चांदी का"

मिलता अच्छा वर तभी हो जब दान दहेज,
करते डट कर काम सब हो जब नेह खू नेग,
"चिकनाई" खुद कर लेती है गुंजाइश,
स्लीपर सीट समेत सवारी तेज।

देते हैं सद्भाव से वर वधु को आशीष,
करें प्रदर्शन दया का जिसको दें बखशीश,
लक्षण करूणा तुष्टि का बनजाती है भीख,
पर न समझ में आ रही कहते किसको "फीस"

सुनकर इतने शब्दाडम्बर,
सिर खुजलाते नारद मुनिवर,
घूस फीस में क्या है अन्तर ?
जो बतलावै वही विप्रवर।

घूस दिये भवसागर को फाँदे,
दक्षिण से वैतरणी लाँघे,
कर्मलोक जब घूस सुधारे,
फीस सदा परलोक पुकारे।

कहें पुरोहितजी अन्तर है केवल मात्रा का,
होता छोटा बड़ा टिकट सचलाचल यात्रा का,
बोले पंडित प्रवर बैठ कर गहरे पानी,
अन्तर है आयाम में बात दूजी नहि जानी।

मात्रा का अन्तर क्या मामूली होता ?
अल्प औषधि ही बढ़कर विष बोता।
फीस है फुटकर "सैम्पुल" में मिली दवाई
थोक रेट से वही सदा रिश्बत कहलाई।

सुनकर ही बात वैद की बोले होम्योपैथ,
भाव एक ही है मगर ताव अनेकानेक,
काँटे से काँटा हटे और ज़हर से ज़हर,
लघु काया की फीस बढ़कर हो जाती रिश्वत।

गुड़ खाकर गुलगुले से करने वाले परहेज,
टेढ़वा चंदन मधुरीबानी ने कर रखी थी टेक,
चाय नही काफी पियेंगे भर प्याला लबरेज़,
जटा जूट में भले खोस दो नही छुएँगे भेंट।

किस्सा बगुला भगत ने ऐसा खींचा खाका,
लगे न कोई जगत् में जो न पीता खाता,
सभी हिलाते हाथ कोई चमचा दिखलाता,
चमचे छोटे बड़े भी कोइ जूठा कोइ साँचा।

चमचा ऊपर वाले का देता छप्पर फाड़,
चमचा पूंजी वाले का कहलाता व्यवहार,
ऊपर की आमदनी सुधारती छोटी सी तनखाह,
इसीलिये "बोनस" बनजाता श्रमिक-वंश अधिकार।

"प्राइवेट प्रैक्टिस" भी होती है ऊपर की आमदनी,
रचना की रफ्तार को तेज करे स्पीड मनी,
"श्वेत राष्ट्र" में हो सकते हैं "हाथी सफेद",
"कृष्ण राष्ट्र" सम्पदा की "काला धन" ही तर्जनी।

तब बोला "बेसुध" विकसाई,
इसमें कुछ बारीकी भाई,
नब्ज धरे की फीस कमाई,
घूस बने जब गरै कलाई।

# पूर्वोत्तर रेलवे का चिकित्सा विभाग

रेल में अफसर बड़े विलासी हैं,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ १ ॥

हाईस्किल्ड थोड़े से कुछ हैं सेमी-स्विल्ड,
बकिया सब जंगल के निवासी हैं,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ २ ॥

हाईस्किल्ड वे हैं जो करते न कोई डिउटी,
सेमीस्किल्ड करें सिक अच्छे भले को,
रात दिन रगड़ा करें कलम और माथे को,
वे ही बेशक अनस्किल्ड खलासी हैं,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ३ ॥

बड़कऊ तबादला बे – मौके करते,
मँझले मियाँ मौके पर न छुट्टी देते,
छोंटे तो इतने खोटे, उनके हैं दाँत अलग,
खाने के दिखाने के,
इन्चार्ज बाबू की हर चाल ही सयासी है,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ४ ॥

पी० ए० को बिन पिये ही चढ़ी रहती,
हेल्थ और प्लानिंग है सौतेली लड़की,
बड़े अस्पताल के भले डाक्टर हैं नानपारा पलट,
हेल्थ यूनिट में सड़ रहे "एम० एस०" सन्यासी हैं,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ५ ॥

किसी को "पी०पी०" के लिए छुट्टी अलबत्ता,
किसी को बीबी के लिए डियूटी भत्ता,
औरों को सीसी के लिए रोटी-मसका,
बाकी के लिए तो ता-जिन्दगी उदासी है,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ६ ॥

हृदय विशेषज्ञ मरें डिवीजन में,
हेल्थ यूनिट में सड़े "डी० सी० एच",
केन्द्रीव चिकित्सालय में "पलें एलसएमेफ"
अस्पताल नहीं युद्ध-स्थली - पलासी हैं
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ७ ॥

जहाँ नहीं सर्जन, वहाँ देते हैं वे बेहोशी,
हैं जहाँ सर्जन, वहाँ न है कोई "ओ०टी०",
ब्लड-बैंक-अफसर हैं "विदाउट डी०सी०पी",
हुलिया-अस्पताल की बगुला लिबासी है,
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ८ ॥

बदल रही हवा बदले दल बादल भी,
उत्तर प्रदेश से मिला उत्तर प्रश्न भरे भारत को,
बदलेगा मेडिकल भी पूर्वोत्तर रेल में,
"बेसुध" बेजुबान! को कबलौं करवट काशी है ?
मेडिकल अफसर मगर खलासी हैं ॥ ९ ॥

*

# ऊपर अल्ला नीचे भल्ला

ऊपर अल्ला नीचे भल्ला फिर भी न खैर सल्ला,
बोलो क्यों राम लल्ला ?
गोरखपुर का गोरखधन्धा या कुर्सी का करिश्मा,
चतुर चाल हो चमचों की या गलत लग गया चश्मा।
मोतिता विन्दी अफसर करै भरोसा कान पर,
जिसे पछाड़ा आँख से कुदरत ने छै अंगुल।
देते पर-उपदेश हैं बनते मिलन-सार,
नहीं देखते निज अनुज हो कैसा भी वह बीमार।
गैंग मैन के घर जाने को तत्पर, छोटे भाई के लिये मगर,
दे सकते न टाइम दो क्षण, क्योंकि नहीं अधिकारी सेवक।
चलती गाड़ी में लिखते नुस्खे कोच अटेन्डेन्ट हो वा कन्डक्टर,
नेता जी को चाय ढाल कर, अपनी मुक्ति का नहीं छोड़ते कोई अवसर।
"अन इकनामिक" लाइने बन रही, उखड़ी पटरी भी जुड़ रही,
"तंग रेल" अब "चौड़ी" हो रही, तो मेडिकल पर गाज गिर रही।
हर डिमान्ड इकॉनमी के पेट में, कम सप्लाई से नेकनामी चपेट में,
जोर सफाई पर ऐसा है, दवा दारू भी झाड़ू की लपेट में।
मेरू-दंड मेडिकल के जो हैं उनकी तबियत रहती लुढ़की,
डिउटी कमर कसाव और ऊपर से बन्दर घुड़की।
खुद करिये या नौकर रखिये, बीवी बच्चों को शामिल करिये,
फिर भी यदि पूरा न पड़े, तो तबादले का बिस्तर समेटिये।
अधिक आदमी मांगो मत, काम चलाओ बाबा-धत,
पढ़ो "सरकुलर" नये नये नित, चलो अढ़ाई कोस नवें दिन।
नया "प्रमोशन" है जिसका भी, नहीं बताओ कुछ ऐसा भी,
जोकि प्रगति के लिए जरूरी, क्योंकि घंटी ऊपर है खतरे की।

रोगी और विभाग के पाते पूरा अवसर,
भले भेजना हो पड़े दिल्ली या जयपुर,
पर न रिफर होते अपने मेडिकल अफसर,
जाँच "एलर्जी" की भले, खुलना हो वक्षोदर,
होनी स्वास्थ्य विभाग पर चाहिए नेक नजर,
सभी विभागों से अधिक रखनी खोज खबर,
नहीं अस्वस्थता बढ़कर रोकेगी पहिये चक्कर,
"बेसुध" बेजुबानों भूत के चढ़ेगा जब सर।

30-10-73

## वान्टेड

बनने को इन्चार्ज जेण्डर मुखन्नस हो,
करने को "सिक-फिट" टेन्डर मुकम्मल हो,
कोल्हू के बैल बने वेन्डर हों मेडिसिन के,
पिसने को चक्की में निस दिन मुसलसल हों।
"जैक आफ आल" हों, यानी, जैकाल हों,
अथवा सियार हों, रगे या दुरंगे हों,
होकर चितकबरे, गीदड़ सी भभकी दें,
सब कुछ के जानकार, बने चतुर्वेदी हों,
यानी जो चौबे जी, सब कुछ डकार कर,
पेट पर हाथ फेर, हिचकी पर हिचकी लें।
डिनर में टोष्ट गोश्त मछली का साग हो,
लंच और कलेऊ में कुक्कड़ू की टाँग हो,
रम हो, या रमणी का मादक कुछ राग हो,
क्षण में चुनाव हो, पल में विकास हो।

जैन कहलाते वही, जो रात दिन पीते हैं जिन,
रमणी कहें, जो जी रही हो, रम की चुस्की में,
मैन बनते हैं वही, जोर जिनका पूरा मन,
पौवा-पसेरी और किलो हो जिनकी चुटकी में।

फैन उनके मौला ऐसे फन के, कि कत्ल की चर्चा न हो,
जब तलक मजमून-ए-मकतूल पर लोग चुस्की लें,
ऐन सब गैन "बेसुध", अक्सर तबादले में,
आऊटर सिगनल के यारों से मुस्की लें।

मार्च–70

## लात के देवता

गलती न दाल जब पौवा के सामने,
होगा फिर काम कैसे माशा या रत्ती से ?
पलते अनाचार की अमर बेल पर जो,
उनको हो कैसे भय छुई-मुई-पत्ती से ?
रहते सराबोर नित्य जो पंच-मकार में,
होंगे वे कैसे खुश धूप-अगरबत्ती से ?
लात के देवता न मानते हैं बात से,
"बेसुध" होते वे सदा ही दुलत्ती से।

## अच्छे हैं

मैडम ने जब पूछा मुझसे,
बच्चे हैंगे कैसे कैसे ?
कहना मुझको पड़ा तब उनसे,
अच्छे हैं पीते हैं, खाते हैं,
कोठे पर भी आते जाते हैं।

2–3–66

# बैरगिया नाला (चिकित्सा विभागीय व्यवस्था)

बैरगिया नाला जुलुम जोर, नीकत्थक नचावे तीन चोर,
नगर डगर में है यही शोर, मेडिकल में घुस गये चोर
रोगी बकरी है भेड़ ढर, होती जिनकी गर्दन मरोड़
बैरगिया……… ।। १ ।।

प्राक्सी पर मेडिसिन बँटे नहीं, आइडेन्टी-कारड अँटे नही
नाड़ी सीना कुछ जँचे नही, फिर भी कतार बे-और-छोर
बैरगिया……… ।। २ ।।

टेलीफोन पर नुस्खे बनते, विटमिन सीरप जो कुछ बकते,
ताकतवर को टॉनिक मिलते लोकल परचेज में सरावोर
बैरगिया……… ।। ३ ।।

लेबोरेट्री में खटमल पलते, मेडिकल में अब रुपये ढलते,
फिट देते उन्हें फिटर कहते, उनसे सबकी ही दवे कोर
बैरगिया……… ।। ४ ।।

भरती में वेटिंग लिस्ट जहाँ, सम्भव न आचरण शिष्ट वहाँ,
लुक-छिप-बेईमानी जहाँ-तहाँ तू-तू मैं-मैं हो तोर-मोर
बैरगिया……… ।। ५ ।।

पंजे पर सूई दूनी हो ऊपर से मिक्श्चर चूनी हो।
चाहें अल्मारी सूनी हो, बाकी सब लेते धूनी हो
कैसा यह बँटवारा छिछोर
बैरगिया……… ।। ६ ।।

नारायण जो निशिदिन जपते, "नारा में आया" वे कहते,
"दामोदर" तो ऐसा ठगते, "है दाम उदर" में यह रटते,

जड़ रहे रात दिन बाँस बड़ा, जो "वासुदेव" का जप करते,
तबला-सितार-तुतही समेत, मेडिकल अफसर कत्थक करते,
हो रहा रोज अन्याय घोर
बैरगिया......... ॥ ७ ॥

कत्थक काफी हैं नम्बर, में पर पटती नही परस्पर में,
इसलिए बराबर नाच रहे, ठगचोर निरन्तर झूम रहे,
थक गये बदन के पोर पोर
बैरगिया......... ॥ ८ ॥

है देर मगर अन्धेर नही, हर रात ढले पे सबेर बनी,
कत्थक की बस टेर यही, ये ठग जबतक हों जेर नही,
जगतें रहना पलकें निपोर
बैरगिया......... ॥ ९ ॥

जब तबला बाजे धींन, धीन रह पाये न कोई उदासीन,
"बेसुध" करके उनको अधीन, खिचजाये उपा पर नया सीन,
इसके पहले कि खिले भोर, बैरगिया नाला जुलुम जोर,
नौ कत्थक नचावें तीन चोर ॥ १० ॥

## वैद्यराज–विरूदावली

चारबजे की भोर से चलकर आधी रात,
बैद्धराज सेवा करें मन मेंवा की आस।
महा-मुनीजर दाहिने, सम्मुख मंडलाधीश,
बड़े चिकित्सक से सदा, माँगें नवलाशीश।
सानुकूल अधिकारी कर खुश लोकल बॉस,

छले बले व कौशले, अक्षत रोली माथ।
सिद्धहस्त शतरंज के देकर शह और मात,
प्रतियोगी के मोहरे, करते नित्य निढाल।
"प्रिय दर्शी" होते परिजन 'मधुभाषी' बनते मित्र,
"भाभी जी" महिला सभी, बेटे चित्र-विचित्र।
"बाबूजी' कम्पाउन्डर, ड्रेसर भाई साँब"
"नाऊ" को ठाकुर कहें, तेली "बड़का साहु"।
रेती को रेवड़ी करैं तिल को करैं तमाल,
उनके उलटे हाथ से निसिदिन नये कमाल।
मुँह पर मसका मालिस, पीछे गहरी मार,
झुके माथ लतियाते, अकड़ें तलवे चाट।
पूजा उदयादित्य की, हारे को हरिनाम,
चलती गाड़ी देख के, देते तेल पिवाय।
"टैक्ट" सजाकर ऊपर, देते फैक्ट दवाय,
उल्लू सीधा कर रहे, पाँचों घी में डाल।
विजय पुरी से कीरत तीरथ राज-उपाधि,
गोरख-धँन्धे से किया हासिल लक्ष्मी वास।
दाना-चारा डाल कर हरा दिखा कर बाग,
कामधेनु को दुह रहे, कुछ धवला कुछ श्याम।
इज्जत पर बट्टा, नहीं मतलब पूरा साध,
गंगा जबलौं बह रही "बेसुध" धोते हाथ।

## अस्पताल बाशान

मीरा केश सँवारती, पलक मारते श्याम,
भौंह तरेरे तेज जब, मूँछ मरोरैं राज।
मामा मुद्रा मातहत करें कुटुम्ब कल्यान,
दिल की लहरे गिन रहे निस दिन अग्गरवाल

रोम रोम में रोग लखि, सिर धुनते नित दास,
ऐसे में ही पनपते हिजड़े और हज्जाम।

अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग,
बेमिशाल बेढब यह अस्पताल बाशान।

न्यारी नगरी नौ-लखी अदभुत अवधी शाम,
प्रतिपल्ली से प्रतिध्वनित "पहले आप" "पहले आप"।

सहयोगी कैसे जुटे, सोच सोच परेशान,
"बेसुध" बीन बजा रहे, भैंस खड़ी पगुराय।

26-1-1984

## नवधनाढ्य-धाम:

वद, मित्रामित्र को प्रविशति गेहे ?
द्वारस्थ कोष्ठान्तर पर्यङ्क प्रसरा,
श्वानाङ्गना प्रश्न करोति यत्र,
जानीहि तन्नव-धनाढ्य धामः ॥ १ ॥

धनेन लब्धितुपाधि गर्विता,
वातानुकूलित वाहनेनागता
अतिथि अनेकानि अशनन्ति-यत्र,
जानीहितन्नव धनाढ्य धामः ॥ २ ॥

अनर्ग लालापित यवनाङ्गलवाणी,
रक्त— रंजिताहत नयनाश्रुपूर्णा,
निरंतरुपेक्षित यत्र वीणापाणि,
जानीहि तन्नव धनाढ्य-धामः ॥ ३ ॥

—सरयू संदेश अक्तूबर-92

## किस्से धुक धुकी के

पाठक जी पल्टा करैं पन्ने फिलस्फी के,
पुष्कर जी पाप ढोयें सारी सितपुरी के,
कमल जी कमाल करैं दुनियां मिससिपी के,
वकियाँ हैं खीचते नक्शे जागरफी के,
सब यहाँ खेलते हैं खेल लुक छिपी के,
पकड़े बस जाते शिकार बे-वसी के,
नयन हैं जमाल गोटा जुमला सिद्दीकी के,
"बेसुध" के किस्से होते सदा धुक धुकी के।

29-3-66

## दाल में काला

ऐसे यदि पउआ तो होंगे किलो कैसे ?
मन पंसेर की तो बात ही निराली है।
मेहरे ही मर्द, जहाँ कहे जाते हों वहाँ
दाल में कुछ काला नही, दाल ही काली है।
वाघ से बिगड़ते जो मुँशीजी हैं रंगे सियार,
सिंह नाम उनका तो जाली है।
"बेसुध" बेफिकर हैं, जबतक सुध लेने को,
बगुला सी सफेद कोटवाली है।

29-12-1965

## गदहा-वैद्यराज

सरगम की तीज-छठी सटकर,
छत्तीसी जनती "ग"-"धा" तत्पर,
खा रोगी की रोटी रूचिकर,
तुरत बढ़ाता "गद"-"हा" संतति,
व्याधि – विनाशी वैद्यराज की
छवि होती समदर्शी "बेसुध"।

## नव-रतन पद्म-श्री के

मुल्ला के लक्षन हैं पूरे खुदकशी के,
गुड्डू जी बोले बयन सदा सिरफिरी के,
दुर्गाजी चिनगी हैं जलती फुलझड़ी के,
मोहन सरदार बने सेवा सतकरी के,
यादव सँभालते हैं काम तस्करी के,
लल्लू हैं मल्लू हैं भल्लू और दल्लू भी,
सारे ही सदस्य हैं चण्डाल चौकड़ी के,
अजीब हैं गरीब हैं नवरतन पदमश्री के।
लाला हैं खाते पिसान किस चक्की के?
हरी हैं नमूना बँधी टक टकी के,
जबतक न खोलेंगे पोल डुग डुगी के,
"बेसुध" की आँख उठे पीर किर किरी के।

31-3-66

# बेसुध के यार

पाठक हैं इसीलिए पाठ पढ़ा करते हैं,
शीर्ष पाठक तो शीर्षक ही लिखा करते हैं,
भाषक जी भाषा में दोष किया करते हैं,
"बेसुध" के यार गला काट दिया करते हैं।

उनके दो हाथ मुलाकात किया करते हैं,
उनके दो बैन सीधी आँख किया करते हैं,
उनके दो नयन दो दो बात किया करते हैं,
उनके तो सैन हिमापात किया करते हैं,
"बेसुध" दिन रैन झंझावात लिये फिरते हैं,
मिलता नही है चैन जब दिलदार नही मिलते हैं।

30-11-65

— — — —

# प्रगति से प्रणति तक : सार्थवाही परियात्रा

(श्री शिवशकर मिश्र)
– पूर्व सचिव उ० प्र० हिन्दी समिति
संपादक "उत्तर-प्रदेश" (मासिक)
सलाहकार, उ० प्र० शासन (सूचना)
प्रकाशन सलाहकार, साक्षरता निकेतन

वृत्ति और व्यवसाय से डाक्टर, प्रवृत्ति से समाज-बोधी और स्वभाव से सौमनस्यी चिंतन-संपन्न डा० द्विवेदी का यह काव्य-संकलन मेरे लिये एक सुखद आश्चर्य के रूप में है। मेरा आश्चर्य तब और बढ़ गया, जब इन कविताओं में चिंतन की एक नयी दिशा, काव्य की एक अभिनव विधा और प्रस्तुति की रोमांचक प्रयोगात्मकता के दर्शन हुये। अब तक संकलन की सभी कृतियों को एकाधिक बार पढ़ चुका हूँ और मुझे ऐसा लग रहा है कि नवें दशक का मैं, एक श्रेष्ठतम काव्य-संकलन को प्रणाम कर रहा हूँ।

नाम से एक परिपाटी और परंपरा की ओर संकेत करता यह काव्य-संकलन अपने में नयी कविता की गति-मति लिये हुये, युग-बोध की चेतना से अभिमंत्रित और सर्वत्र व्याप्त उद्वेगी असंतोष से परिवेष्टित है। जन-कवि गोरख पाण्डेय ने कहा था कभी-व्यग्रता ही प्रवाह को गतिशीलता देती है। बंगला क्रांति कवि नजरूल इस्लाम ने संघर्षी मनोवेग को आहुति देते हुये कहा था कभी—

मथन का कर्मणा में,
शांति के क्रांतिजयी स्वर,
मेरे आस्तित्त्व की सार्थकता के शंखनाद हैं।

इसी भावना को गुजराती मधुमोहन ने स्वरूप दिया है –

सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है,
द्वंद्व से निर्वसन संघर्ष से,
इसकी अनवरत गति हुई,
सृष्टि का प्रवाह है ।

कवि पद्माकर जी ने इन तीनों कवियों के मंतव्य को मानों दो पंक्तियों में समेट लिया है –

केवल कुरूक्षेत्र या द्वापर तक सीमित नहीं,
यह देव-दनुज-समर निरंतर निर्बाध चला जाता है ।

पुराणों में चेतन अचेतन प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुये । बुद्ध-दर्शन दोनौं की लयात्मकता स्वीकारता है । निर्गुण सुधी संत परागात्मक अनुराग में प्राणियों की प्रविष्ट को स्वीकारते हुये अहँ में ब्रह्म की खोज करते हुये आत्मसाती विसर्जन में अपनी सत्ता स्वीकारते हैं । पद्माकर जी ने इस सब सोच का सहजीकरण किया है –

"बेसुध"–संघर्षमयी परिस्थियों के मध्य,
"साधन" और "साध्य" का "शाश्वत समन्वय",
वांछनीय है, विवेकमयी "आस्था" का लय-छंद,
मन की "अस्मिता" और "तन" के "अस्तित्व"–हेतु ।

भारतीय जीवन दर्शन की अपनी विशेषतायें है । वह न तो परिधि का परिसीमन करता है और न विस्तार की अनंतता ही स्वीकारता है । हेगेल का तत्त्व बोध कभी शंकर-भाष्य जान पड़ता है, कभी तत्त्वमसि की मीमाँसा पर दक्षिण के संत तारकेश्वर की छाया । जो भी हो । पद्माकर जी की इस छोटी पुस्तिका पर अपने समग्र और

समवेत रूप में भारतीय दर्शन की प्रतिच्छाया है। "न दैन्यं न पलायनं" यहाँ के चिंतन का मेरुदण्ड है। 'चरैवेति' हमारी आकांक्षा रही है।

सुवर्ण दीप में शिव-शासन एवं त्रिदेवोपासन की परंपरा है। वहाँ के भारतीय निवासियों का विश्वास है कि सम्राट् एरलंग ने अपने सँतमुखी जीवन में 'पेटियास' नामक जिस ग्रंथ की रचना की वह वेदांत का परिमार्जित स्वरूप और आध्यात्मिक चिंतन की क्रमबद्धता का मध्य-बिंदु है। एक अंश इस प्रकार है —

तट और मँझधार अनंत के दो स्वरूप हैं,
निहारते रहते हैं एक दूसरे को, पर मिलते नहीं,
जब मिलते हैं, तो दोनो दोनों में लय हो जाते हैं।

कथाकार केथराइन मेन्सफील्ड ने केवल तीन कवितायें लिखीं। सबसे चर्चित है स्ट्रीम-वे (लहर पथ)। इसको एकाधिक रूपों में परिभाषित किया गया है। इसका मूल इस प्रकार है : —

लहर प्रगति है, तट प्रवृत्ति है,
और दोनो का मिलन अथ की इति है।

इन सब परिकल्पनाओं का स्मरण मैंने विनय पूर्वक किया पद्माकरजी को इन पंक्तियों के संदर्भ में -

"तुम सलिल मंझधार के हों
मैं सरित-तट की सहेली,
तुम सुलझती सी समस्या,
मैं सदा अनबुझ पहेली"।

और इस संदर्भ के साथ ही कश्मीरी कवि पृथ्वी मोहन मेरे

कान में फुसफुसाये —

एक धारा उस की,
अरविंद मुखी नभ पट से
गोद में उठा लिया
श्वेत-मना हिमगिरि ने,
गति-मति से मिली तो,
भागीरथी बन गयी।

अभिशापी सामाजिक संत्रास के प्रति कवि सजगता उड़िया कवि वैष्णव झा की ओर खींच ले जाती है मेरा मन। वैष्णव वय के मध्यांतर में मुझे प्रिय रहे हैं। उनकी ये पंक्तियाँ वर्षों तक गुनगुनाई हैं—

वही मित्र जो पकड़ डूबते हुये स्वजन का हाथ ले,
है पाथेय वही जो काँटों के पथ पर भी साथ दे,
मैं उससे क्या पूछूँ, उसको क्या समझूँ, या क्या कहूँ
संकट में जो उदासीन रहा, झुका विनय से माथ ले।

पद्माकरजी ने अपनी बात अपने ही लहजे में कही है -

साँप के आने जाने का डर नही,
भय है उसके आस्तीन में बसेरे से।

एक अन्य प्रकरण में कवि ने अपनी भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की है -

शक नहीं इसमें तोला माशा या रत्ती हैं,
लगती ज़रूर वह छुई मुई की पत्ती है,

और फिर कवि ने जलती मोमबत्ती को मार्ग-दर्शिका सरस्वती की संज्ञा प्रदान की है।

आज की सामाजिक विषमता, असंगति और ऊहापोही चिंतन को शब्द स्वरूप दिया कवि ने—

उनके दो हाथ मुलाकात किया करते हैं,
उनके दो बैन सीधी आँख किया करते हैं,
उनके दो नयन दो दो बात किया करते हैं,
उनके दो सैन हिमापात किया करते हैं।

इसी अहापोही स्थिति का चित्रांकन किया है उत्तर छायावादी श्रेष्ठ कवयित्री विद्यावती मिश्र ने—

अपने को समझना हो तो इंसान को समझो,
अभिशाप से बचना हो तो वरदान को समझो,
तुम खोजते फिरते हो कहाँ कर्म धर्म को
दुनिया को समझना है तो भगवान को समझो।

दक्षिण अफ्रीका में एक पक्षी है नियोटाल। उसमें अनेक रंग होते हैं। साथ ही वह दिन में अपने कई रंग बदलता है। अबू उस्मान के कथन के समान वह इन्द्र-धनुषी नहीं डगलासी फूलों के समान कचनारी है। पद्माकर जी की कविता भी दिशा के संकेत और विधा के परिवेश से मुक्त है। एक अनौपचारिक भेंट में उन्होने हाल में प्रकाशित लेख पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं पर टिप्पणी की थी–"मैं स्वयं भी जीवन के उपवन में इन चारों तत्त्वों का परोक्ष आभास और अस्तित्त्व स्वीकारता हूँ। इसीलिये मैंने संकलन की कविताओं का नियोजन उसी आधार पर किया है। ये चारों तत्त्व मेरी कविताओं में स्पष्टता: आभासित होते हैं।"

पद्माकरजी के इस कथन पर मैं अर्से तक सोचता रहा फिर अनायास ही मुझे ऐसा लगा कि यदि सांख्य में पत्रं का पोषण है तो

मनु स्मृति में पुष्पं का प्रसाद। अरविंद-दर्शन फलं की सात्विकता का प्रतिपादन करता है और चाणक्य स्पष्टतः तोयं की मीमांसा है। कवि ने इन्हें प्रमाणों के रूप में रेखांकित किया है। कुल मिलाकर इन कविताओं का वाह्य कलेवर "उत्तिष्ठत-जाग्रत" का सकेत है तो उसकी अंतरंगता में "प्रवचनभ्यां न प्रमदितव्यम्'-सी हलकी सी झलक। "वासुदेवः सर्वमित" के रूप में इन कविताओं में भारतीय संस्कृति के कई स्वरूप हैं। 'विद्या-गुरूणाम्' के संदेशवाहक करपात्री जी महाराज की मंत्रणा कहीं कहीं इन कविताओं में उद्भाषित हुई है।

उद्धरण के आवश्यक विस्तार से बचते हुये, यह प्रणति अपने में पाथेय बनकर चलती और रचनाकार को सहारा देती है कि अथर्व वेद की अनेक उक्तियाँ युगानुरूप स्वरूप में पद्माकर जी के काव्य में गरिमा बनकर पंक्तियों के बीच लुकी-छिपी है। 'जिवेभ्य प्रमदः', 'आरोहं तम सौ ज्योति', 'मा तो द्विषत कश्चन', उद्यानं ते पुरूष नावयानाम् और फिर कामना की थी– सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।

पद्माकर जी की कविता जीवन के यथार्थ को अवगाहते हुये आदर्श की सात्त्विकता का आह्वान करती है। उसमें बहुत कुछ वही है जो तुम्हारे सामने है, पर कुछ ऐसा है जो नेपथ्य की अग्राह्यता में बसा है। मिल्टन की कविता "पैराडाइजलॉस्ट के समान कभी उसमे निराशा का मति भ्रम है, तो कहीं पैराडाइज रिगेण्ड" के समान प्राप्ति की परितुष्टि। रवि बाबू के शब्दों के समान ये कवितायें शृंखला की कड़ियाँ हैं, जो संसार को बाँधने की चेष्टा में स्वयं को बाँध लेती है। शेख सादी के समान इन कविताओं में आशा का संचार है और वाल्टर के समान विपरीत प्रसँगों से जूझने का ओज। कर्म की प्रमुखता का प्रतिपादन है, इन रचनाओं में, साथ ही नियति की स्वीकृति भी। रस्किन समान कवि कल्पना में उड़ता और खलील

जिब्रान के समान कल्पना द्वारा हृदय को आह्लादित करने की कामना करता है। इस दष्टि से कवि की कतिपय पंक्तियाँ स्वयं परिभाषित हैं —

कौन सहचरी, कौन तनुज तव ?
अति विचित्र संचारी बंधन सव,
तुम किसके हो, कौन जनक तव ?
बन जिज्ञासु करो चिर-चिंतन।
..............

सरितायें सागर में क्यों डुबा दीं ?
..............

सकल-धर्म-सद्भाव सुहृद-राष्ट्र-भारती।
..............

ऊधो भरमाता जो, वही तो विधाता है।

जव चेतना के साथ देश में जन-कवियों का अवतरण हुआ। पराधीनता काल की राष्ट्रीयता रूप बदलकर जन कविता में उभरी। मुक्ति बोध से लेकर गोरख पाण्डेय तक ने जन-कविता की अलख जगायी। मुक्ति बोध का स्वर था –

संगम पहाड़ों पर, सूर्य कहाँ उतरा ?
शायद वह घुटन की घटाओं में सो गया।

धूमिल ने ऊँचे स्वर में उद्घोषित किया -

कितनी अवसाद भरी, सड़क यह दुपहर की,
इससे तो अच्छी है शाम, रतनारे अम्बर की भूमिका।

संथाली निशाने बाज़ ने सर उठाकर कहा —

कल तक तुम जगते थे, आज क्यों सो गये ?
कल तक कुछ और थे, आज कुछ हो गये।

अभी हाल में विहार के अनिरुद्ध प्रसाद "विमल" पश्चिमी बंगाल के नलिनी कांत, हरियाणा के डा० रामनिवास गुप्त, आँध्र के के०जी०

बालकृष्ण पिल्लै, राजस्थान के चाँद शेरी तथा दिल्ली के भगवानदास ऐजाज की स्फुट कवितायें पढ़ने का सुयोग मिला। इनके साथ ही मुझे एक चर्चित मुक्तक का स्मरण हो आया—

"लहर की गति बदलती है, किनारा तो नहीं बदला,
दिशायें तो बदल जाती, सितारा तो नहीं बदला,
मुसाफिर तो बदलते हैं, बदलती राह,-मँजिल है,
बदल पाथेय जाते हैं, सहारा तो नहीं बदला।

पद्माकर जी की कवितायें किनारा, सितारा, और सहारा के समान अडिग आस्था के प्रतीक के रूप में हैं। उनके चिंतन में आत्म-विश्वास हैं, मनन में जयश्री की कामना, अर्चन में इष्ट के प्रति समर्थन और अपनी समवेत चेष्टा में 'स्व' का समष्टि के प्रति लोकर्पण। अपने इन्हीं मनोभावों को कवि ने रागात्मकता प्रदान की है—

नहीं कहीं पर किसी समय भी दु:ख का किंचित् भाग हो,
धुले मलिनता मन की, सबके सिंचित नव अनुराग हो॥

कवि ने अपने इस संकलन को परोक्ष रूप से चार कक्षों में सजाने का आयास किया है। ये कक्ष यों तो अपने में भिन्न तथा स्वतंत्र अस्तित्व परक है, पर इनके बीच में अंतर्पट हैं, छोटे छोटे दरवाजे। कवि का चिंतन उन्मुक्त भी है आत्मबद्ध भी। इसीलिये संकलन के-प्रखण्ड-पोषी-कक्ष, पद्म-पीयूष, पद्म-पराग, पद्म-प्रसंग तथा पद्म-प्रमोद, अपने में पृथक भी हैं, मिले-जुले भी। प्रथम में अध्यात्म है, दूसरे में शृंगार, तीसरे में सामाजिक प्रसंग है और चौथे में हास्य व्यंग्य। विश्लेषण की चेतना रोमाँच को जन्म देती है और रोमाँच कृति-निष्कृति का पर्याय है।

चर्चित उक्ति है, "भाव अनूठे चाहिये भाषा कोई होय"।

प्रस्तुत संकलन की कवितायें इसी उक्ति की परिपुष्टि करती हैं। इसमें तत्सम और तद्भव शब्द तो अंतरंग हैं ही, कुछ उर्दू के कुछ संस्कृत के, और कुछ अंग्रेजी के शब्द कविता के बिखराव में सर्वत्र बिखरे हुये हैं। कहीं कहीं समुचित तालमेल के अभाव में भाषा अटपटी या सधुक्कड़ी हो गयी है, पर भावों की गहनता और चिंतन की सहजता ने रचना को सौमनस्यता प्रदान की है।

बर्ट्रेण्ड रसल ने लिखा था कभी रचना कृति के व्यक्तित्व की सार्थकता है। रसल की इस टिप्पणी पर रवि बाबू ने टीका की —पर यह तो तभी हो सकता है जब रचनाकार पूरे मन के साथ अपनी धर्मिता के लिये समर्पित हो। सृजन की आंशिकता व्यक्ति की आधी-अधूरी झलक दे पाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि काव्य रचना डा० पद्माकर जी के व्यक्तित्व की विश्राम-स्थली है, एक सभागार, एक वीथिका, और परिगमन। उनके पास वय की सिद्धि है, अनुभव की तारतम्यता, चिंतन का प्रवाह, और इस सबके साथ रचना-धर्मिता के प्रति अविचल आस्था।

विवेकानन्द ने अपने अंतिम संवाद में अपनी विफलता स्वीकारी है—जो लेना चाहिये था, न ले सका, जो देना चाहिये था, न दे सका। मेरा जीवन मेरे अंतर्मन अधूरेपन का अहसास है लगता है यही कुछ सोच रहा होगा पद्माकर जी का। रचना में यत्र-तत्र परिव्याप्त निराशा उसी की देन है। मेरी प्रतीति है कि यही शायद जीवन-वृत्त का अवसादी परिच्छेद है।

भय है अनेक सुधियों, सपनों और प्रसंगों में भटकता मेरा मन इस रचना के साथ आकाशी-विस्तार की करिकल्पना न करने लगे। कवि और पाठक के बीच का अंतराल उकताऊ न बन जाय इस

आशंका वश अपनी विवेचना बटोर रहा हूँ, दृष्टि समेट रहा हूँ। अपनी सारी भावचेष्टा को सारगर्भित करते और अपने सुविज्ञ कवि मित्र पद्माकर जी को प्रमाणी आशीष प्रदान करते हुये श्रेष्ठतम कवयित्री विद्यावती मिश्र की अभिव्यक्ति को स्वर दे रहा हूँ -

"कवि तुम्हारे स्वप्न यदि स्वीकार हो पाते,
तो नियति के प्रश्न के उत्तर स्वयं आते,
प्रकृति की अपनी विवशता मनुज की सीमा,
मौन संबोधन तुम्हारे राग बन जाते।"

————

अनंत चतुर्दशी सं० 2051
(कवि के 62वें जन्मदिवस पर)

— 223, राजेन्द्र नगर,
लखनऊ-4

————

रीत चली ससला पयस्विनी के,
पथ पर शांति छा गयी थी तभी,
अमित-शक्ति-जनित अदिति पदाघात से,
विकल "बेसुध" हनी पाताल-पुरी गयी थी।

————

मुख पृष्ठ के चित्र के रचयिता श्री चन्द्र भूषण त्रिपाटी

————

(4) वैज्ञानिक लेख—ज्ञानोदय, विज्ञान-लोक, विज्ञान-जगत् धर्मयुग, आपका स्वास्थ्य, त्रिपथगा, ग्राम्या में स्थायी स्तम्भ "रोगों से लड़िये" "स्वास्थ्य चर्चा", "जहालत से लड़ाई" आदि।

(5) ललित निबंध—सरिता, मुक्ता, त्रिपथगा, आज, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, रेल-रश्मि, रेलवे-मैग्ज़ीन, भारतीय रेल, आदि।

(6) हास्य-व्यंग्य अगद-पचीसी, युग चेतना, आपका स्वास्थ्य।

(7) समीक्षा :- 'कलम की आँख स्तम्भ' बासंती (वाराणसी) में

(8) पाठकों के पत्र :- कल्पना (हैदराबाद) स्वतंत्र भारत, नव-जीवन, आज आदि।

(9) सम्पादन- मेडिकल कालेज पत्रिका तथा सरयू-संदेश

(10) अंग्रेजी लेख तथा सम्पादक के नाम पत्र, पॉयोनियर, नेशनलहेराल्ड, हिस्ट्री ऑव मेडिसिन (हैदराबाद)

उपरोक्त रचनाओं का संकलित संस्करण निम्नांकित शीर्षकों से शीघ्र पुस्तकाकार होगा।

(1) जहालत से लड़ाई (2) रोगों से लड़िये (3) मृत्युंजय की साधना (चिकित्सा विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेताओं का व्यक्तित्व एवं कृतित्व) (4) हिन्दु युग में शल्यन (5) समीर-सौरभ (स्व० श्री रामाज्ञा द्विवेदी "समीर" के संस्मरण) (6) अगद-आखर

पुरस्कार :- नवीं कक्षा में रजत पदक, दसवीं में रजत तथा स्वर्ण पदक, मेडिकल कालेज में स्वर्ण पदक, अ० भा० चिकित्सा विद्यालयीन प्रबंध प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार आदि।

— श्रीमती शक्ति अमिताभ-एम०एस-सी० (रसायन)